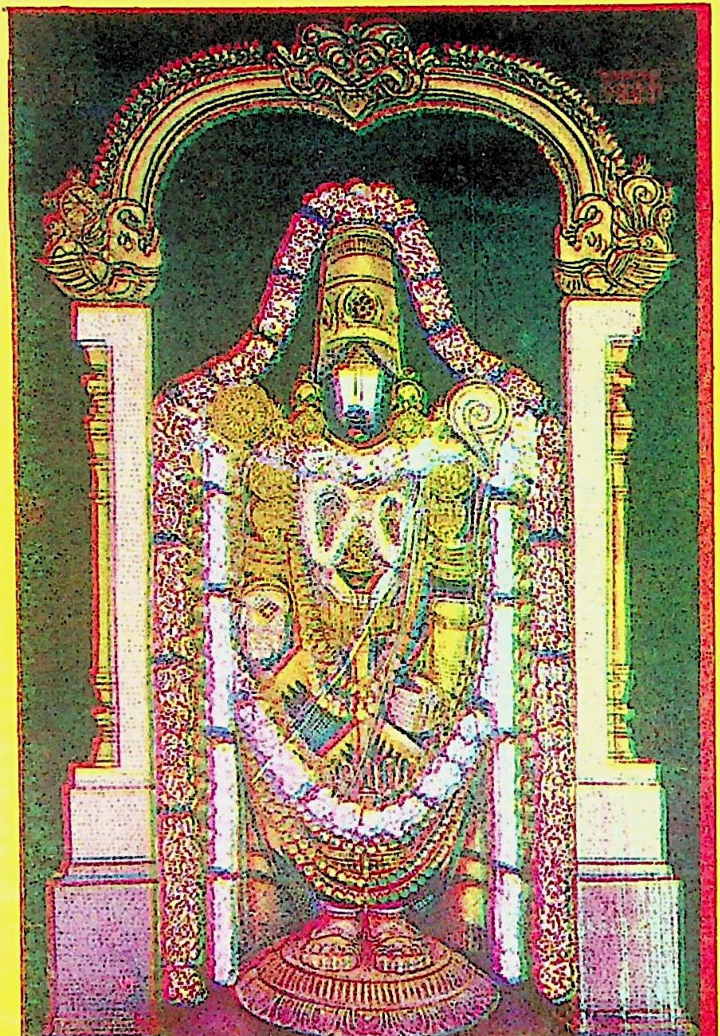
श्रीमद् आलवन्दारस्तोत्रम्



श्रीमद् आलवन्दारस्तोत्रम् ।

श्रीवरदवल्लभास्तोत्रसमेतम् ।

॥ श्रीः ॥

श्रीमद्यामुनमुनिप्रणीतं ।

श्रीमद् आलवन्दारस्तोत्रम् ।

श्रीवरदवल्लभास्तोत्रसमेतम् ।

पं. भागवताचार्यकृत-

प्रदीपिकाख्यभाषाटीकासमलङ्कृतम् ।

• • • • • •

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष- ''श्रीवेंकटेश्वर'' स्टीम् प्रेस,

बम्बई.

संस्करण : जनवरी २०१६, सवंत् २०७२

मूल्य : ३० रुपये मात्र

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,
Pune -411 013.

भूमिका।

इस संसारमें अर्थ धर्म काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं, उनमें सबलोग मोक्षहीको परमपुरुषार्थ कहते हैं बातको वेदान्तके उपबृंहण भागमें श्रेष्ठतम श्रीमद्भागवत पुराणके प्रथमस्कन्धमें कहा है कि (सवै महाभागवतः परीक्षिद्येनापवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः। ज्ञानेनवैयासकिशब्दितेन भेजे खगेन्द्रध्वजपादमूलम्॥) श्रीशुकदेवजीके ज्ञानोपदेशसे महाभागवत राजा परीक्षित् जिस अपवर्गको प्राप्तहुए वह क्या है कि- गरुडध्वज श्रीकृष्णकेचरणारविन्द, तब यह सिद्धान्त हुआ कि भगवच्चरणारविन्दप्राप्तिका नाम मोक्ष है, उसका साधन केवल आपकी प्रसन्नता है, ठीकही तो है अपने मिलनेमें अपनी प्रसन्नताही कारण हो सकती है, उस प्रसन्नताका सम्पादक भक्ति है, भक्ति नामप्रीतिका है सो पूर्वाचार्योंका कथन भी है, कि (भक्तिर्मुक्तेरुपायः श्रुतिशतविहितः सा च धीः प्रीतिरूपा, तन्निष्पत्त्यै फलेच्छाद्युपधिविरहितं कर्म वर्णाश्रमादेः। ज्ञानध्यानादिवाचां समफलविषया सैव

युक्ता प्रतिष्ठा, सामान्योक्तिःसमान प्रकरण पठिता पर्यवस्येद्विशेषे ।।) सैकड़ श्रुति भक्तिको मुक्तिका उपाय कहती है यदि कहो कि श्रुतियें तो ज्ञानको मुक्तिका साधन कहती हैं वहां यह उत्तर है कि वह भक्ति प्रीतिरूप ज्ञानकाही नाम है उसकी सिद्धि निष्काम वर्णाश्रमप्रयुक्तकर्म करनेसे होती है, समान प्रकरणमें ज्ञानध्यानादिसामान्य शब्दोंकाभी भक्तिरूप विशेषज्ञानमेंही तात्पर्य ग्रहण किया जाता है, इसप्रकार जब भक्ति नाम प्रीतिका हुआ तब ठीकही बात है कि जो जिसके ऊपर प्रीति करता है उस प्रीतिकरनेवालेके ऊपर जो प्रीतिका विषय कृतज्ञहो तो अवश्यही प्रसन्न होता है और जो अतिप्रसन्न होता है वह जिस पर प्रसन्न हुआ आप स्वयं उसीका हो जाता है, लोकमेंभी देखते हैं कि जो जिसपर अतिप्रसन्न होता है वह यही कहता है कि हम आपके हैं परंच अतिप्रीतिसे एक और भी चमत्कार होता है कि प्रीतिके विषयकी स्फूर्तिकी प्राप्ति होने लगती है जैसे किसी कृष्णप्रियाका अपनी

सखीके प्रति वचन है, कि (सङ्गमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्य। एकः स एव संगे त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे॥) अपने प्रियके संगम और वियोग इन दोनोंमें विरह श्रेष्ठ है क्यों कि संगम समयमें तो एकही प्रिय उपस्थित्त रहता है पर विरहको धन्य है कि जिसमें त्रिभुवन सबही प्रियमय देख पड़ता है, बस यही दशा पूर्णभक्तिवालेकी है। अब आप प्रीतिका कार्य तो समुझही चुके, पर अब किंचित्‌परमात्माके स्वरूप स्वभावके तरफभी ध्यान दीजिये, जो कहा है कि (वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना॥) वेदवेद्य परमपुरुष जब श्रीरामचन्द्रहुये तब साक्षात्‌वेद रामायणरूपसेप्रगट हुआ है उस रामायणके आरंभमें परब्रह्मके गुणोंका प्रश्न है, कि ऐसे गुण जिसमें होवैं उसको परब्रह्म जानना, वे गुण कौनसे हैं कि? (को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्। धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः॥) इत्यादि

श्लोकोंमें जो कहे हैं सो हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा क्षमा दया वात्सल्य कृतित्व कृतज्ञता आदि अनंतकल्याणगुणोंके सागर हैं, हमलोगोंके सदृश कृतघ्नतादि दुर्गुणवाले नहीं हैं, तब यदि हमको परमात्मा किंचित् प्रिय लगेंगे तो हम परमात्मा को अतिप्रिय लगने लगेंगे क्योंकि वे परमकृतज्ञ हैं. जब हमकोभी परमात्मा अति प्रिय लगने लगें तब तो परमात्मा हमको स्वीकार करें यह तो छोटी बात है किंतु परमात्माही हमारे होजावें इसमें संशय नहीं। इसी विषयको श्रीभाष्यकारने भी कहाहै कि (प्रियतम एवं हि वरणीयो भवति यस्यायं निरतिशयः प्रियः सएवास्य प्रियतमो भवति यथायं प्रियतम आत्मानं प्राप्नोति तथा भगवान् स्वयमेव प्रयतते इति। भगवतैवोक्तं तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्। ददाभि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥ इति) अतिप्रिय जनही स्वीकार करनेयोग्य होता है जिसको परमात्मा अत्यंत प्रिय होते हैं वह परमात्माका भी प्रियतम होता है जैसे यह

प्रियतम पुरुष भगवान्‌को प्राप्त होजावै तैसे आप भगवान् प्रयत्न करते हैं ऐसा भगवान् ने ही कहा है कि निरंतर प्रीतिपूर्वक भजनेवालोंको हम आपही बुद्धि देते हैं कि जिससे वे हमको प्राप्त हो जाते हैं। इसप्रकार प्रीति परवश होकर आप जनोंके हो जाते हैं इसीसे श्रीभागवतादिमें आपका नाम आत्मप्रद है, शास्त्रमें जो यह कहा है कि (ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः, तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यःपन्था विद्यतेऽयनाय) ज्ञानके विना मुक्ति नहीं, परमात्माको जानकरही आत्मा मृत्युका उल्लंघन करता है, उसकी प्राप्तिके लिये ज्ञानसे दूसरा मार्ग नहीं है सो यदि केवल ज्ञानमात्र मुक्तिसाधन होवे तो सामान्यसे घटपटादिका ज्ञान तो सबहीको है पर उससे मोक्ष नहीं देख पडता, 'परमात्मा है' ऐसा सामान्यज्ञान भी बहुतोंको है पर मोक्ष नहीं होता, तस्मात् ज्ञानविशेषही कहना होगा, तब वह भक्तिरूपही ज्ञान जानिये कि जिससे मोक्ष होता है क्योंकि प्रीतिरूप ज्ञानकाही नाम भक्ति है परंच यह पराभक्ति है, अपरा

जो साधनभक्ति श्रवणादिरूप नवधा कही है उससे यह सिद्ध होती है, वह साधनभक्ति भगवत्सेवारूप है, कहाभी है कि (भज इत्येष धातुर्वै सेवायां परिकीर्त्तितः। तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिशब्देन भूयसी।) भजधातू सेवामें वर्त्तता है उस से बुधजन भक्तिशब्दसे सेवाको कहते हैं। यदि कहो कि इस सब कथनसे क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ तो अब संगमन करते हैं, गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने रामायणमें कहा है कि "संतहृदय नवनीतसमाना। कविन कहा पन कह नहिं जाना॥ निजपरिताप द्रवै नवनीता। परहितद्रवहि ते संत पुनीता।" इसकथनके अनुसार संसारीचेतनोंका अज्ञानकृत दुःख देखकर द्रवीभूतहृदयवाले श्रीयमुनाचार्यस्वामीने यह श्रीमन्नारायणके विषयमें ऐसा विलक्षणस्तोत्र किया है कि यदि आस्तिक व्युत्पन्नमात्रएकवार भीइसस्तोत्रकापाठ करेतो अर्थभान होने से अवश्यही स्वयंरोमाञ्चितगात्रवाला गद्गदकंठ तथा प्रेमसे

अश्रुपूर्णनेत्रवाला हुए विना नही रहेगा, वस अव आप विचार कीजिए कि मनुष्यजन्मका फल इससे अधिक और भी कुछ दूसरा सात्त्विकशास्त्रमें कहा है ? बल्कि उलटी निन्दा करी है कि (शृण्वञ्जनार्दनकथागुणकीर्तनानि देहे न यस्य पुलकोद्गमरोमराजिः । नोत्पद्यते नयनयोर्विमलाम्बुमाला धिक्तस्य जीवितमहो पुरुषाधमस्य ॥) गोविन्दके कथाकीर्त्तन श्रवणादिमें जिनके देहमें पुलक नहीं हुआ, नेत्रोंसे अश्रुपात नहीं हुआ ऐसे पुरुषधामकेजीवनको धिक्कार है, तत्रापि इसकलिमें मनुष्यजन्मका क्या मुख्यकर्त्तव्य है इसविषयको देखना हो तो पद्मपुराणके सृष्टिखंडके पचास तथा इकसठके अध्यायको वाचकर देखिये यही निरूपण किया है विस्तारके भयसे यहां नहीं लिखा है। अब अनुसंधान कीजिये कि जब एकवार इसस्तोत्रके पाठसे यह दशा प्राप्त होती है तो फिर निरंतर प्रतिदिन इसके पाठसे ज्ञानमें प्रीतिरूपता प्राप्त होकर सिद्धा

भक्तिका अधिकारी होजावे इसमें क्या आश्चर्य है, इसीसे इसस्तोत्रका नाम स्तोत्ररत्न हुआ है, तथा प्रसिद्धनामइसका आलवन्दारस्तोत्रभी है, इसकी जितनी प्रशंसा करी जाय उतनी थोडी है पर सामान्यसे इसकी यही प्रशंसा है कि जैसे शिवस्तोत्रोंमें पुष्पदन्ताचार्यकृत महिम्नस्तोत्रसे उत्कृष्ट दूजा नहीं तैसे विष्णुस्तोत्रोंमें भी इससे उत्कृष्ट कोई दुसरा नहीं है, श्रीयामुनाचार्यस्वामीकृत ये आठ ग्रन्थ है-कवित्व- "आगमप्रामाण्य" एक महापुरुषनिर्णय यह दूजो तथा आत्मसिद्धि तीसरी बखानिये, चौथी है संवित्सिद्धि पांचमी है ईश्वरसिद्धि छठयें एक गीतार्थसंग्रहको जानिये। सातमो श्रीवरदवल्लभा स्तोत्र लक्ष्मीको आठमों आलवन्दारस्तोत्ररत्न मानिये, जिनके अष्ट ग्रन्थ ये श्रीभाष्यकार हृदयधरे ऐसे श्रीयामुनमुनि सदा उर आनिये ॥ तिनमेंवरदवल्लभास्तोत्र काञ्चीस्थ श्रीवरदराजभगवानकी प्रियतमा श्रीवरदवल्लभा लक्ष्मीके विषयमें है, स्तोत्ररत्न श्रीवैकुंठनाथके विषयमें

है। श्रीभाष्यकार भगवद्रामानुजाचार्यने गद्यके आरंभमें श्रीवैकुंठनाथकी शरणागतिसे प्रथमपुरुषकारभूत-श्रीमहालक्ष्मीकी शरणागति करी है इसवास्ते भगवत्स्तोत्रके पूर्व श्रीलक्ष्मीस्तोत्र हम लोगों कोभी करना उचित है इसीसे इसपुस्तकमें भी प्रथम लक्ष्मीस्तोत्र पीछे भगवत्स्तोत्ररखा है, इन दोनों स्तोत्रोंकी हिन्दीभाषा मैंने अपने सदृशसरलबुद्धिवाले लोगोंके अवलोकन करनेको लिखी है यदि अपने सौहार्दसे कोई बडेलोग भी इसको देखें तो यह उनकाही औदार्य है। वास्तवमें तो श्रीयामुनमुनिकी श्रीसूक्तिका अर्थ सबहीको स्वमतिके अनुसार करना है तब मैंने भी अपनी मतिके अनुगुण किया है, गद्यके आरंभमें भगवान् श्रीभाष्यकारने भी यह कहा है कि (यामुनार्यसुधाम्भोधिमवगाह्य यथामति। आदाय भक्तियोगाख्यं रत्नं सन्दर्शयाम्यहम् ॥) श्रीयामुनार्यरूप अमृतसमुद्रमें यथामति अवगाहन करके हम भक्तियोगरूप रत्नको दिखाते हैं, तो जब

श्रीभाष्यकारभी यथामति अवगाहन करनेको कहते हैं तब हम लोगोंकी क्या गति है तथापि जैसी मति तैसी गति है। तथापि क्रम ऐसा रखा है कि-प्रथम अवतरण पश्चात् मूल तदनु अन्वय तदनंतर भाषानुवाद है, संस्कृतके परिज्ञानवालोंको श्रीमद्वेदान्ताचार्यकृत स्तोत्ररत्नभाष्य सन्तोषजनक है जिसके छापनेका विचार "श्रीवेंकटेश्वर" यन्त्रालयमें है यह भाषा तो केवल संस्कृतमें प्रवेशवाले तथा भाषाके अभिज्ञोंको सुखप्रद होनेके लिये सेठसाहेब "श्रीवेंकटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्ष खेमराज श्रीकृष्णदासजीके कथनानुसार मैंने लिखी है, प्रायः आजतक मूलपाठभी कही देवनागराक्षरोंमें शुद्ध नहीं छपा है, सज्जनमहानुभाव इसके पाठको देखकर पाठ सुधार सकते हैं। इसमें जिस अंशमें जो भूल रही हो महान् लोग इसकी स्वयं क्षमा करेंगे तथा 'तद्वाग्विसर्गो' इस न्यायको चिन्तनकर मेरेको अनुग्रहपात्र करेंगे।

सर्वोंका शुभचिन्तक-

श्रीवृन्दावननिवासी, पं. भागवताचार्य.

॥श्रीः॥

अथ

वरदवल्लभास्तोत्रम्।

हिन्दीटीकासहितम् ।

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

यत्पादाम्भोरुहध्यान विध्वस्ताशेषकल्मषः ।
वस्तुतामुपयातोऽहं यामुनेयं नमामि तम् ॥
यत्पादाम्बुजधूलीधूसरितोरास्स पुण्डरीकाक्षः ।
कुरुते भागवतार्यस्तान्नत्वा तन्नुतेर्भाषाम् ॥

अवतरण :- भगवत्प्राप्तिकांमनावाले श्रीयामुनाचार्य स्वामी भगवत्प्राप्तिघटनापटीयसी सकललोकोंकी सनातन जननी सकलजीवोंपर परमवात्सल्यवती परमात्माको आश्रित चेतनोंके दोषोंको विस्मरणकरानेवाली तथा परमात्मासे चेतनोंको अंगीकार करानेवाली ऐसी श्रीमहालक्ष्मीकी स्तुति चतुःश्लोकी

(चार श्लोकों) से करते हैं, तहां प्रथम श्लोकमें यह कहते हैं कि ऐसे वैभवयुक्त आपका हम कथनभी कैसे कर सकते हैं-

कान्तस्ते पुरुषोत्तमः फणिपतीः शय्या-
ऽऽसनं वाहनं, वेदात्मा विहगेश्वरो जवनि-
का माया जगन्मोहिनी ॥ ब्रह्मेशादिसुर-
व्रजस्सदयितस्त्वद्दासदासीगणः श्रीरि-
त्येव च नाम ते भगवति । ब्रूमः कथं त्वां
वयम् ॥१॥

अन्वयः- हेभगवति ! पुरुषोत्तमः ते कान्तः फणिपतिः शय्या आसनं (च) वेदात्मा विहगेश्वरः वाहनं जगन्मोहिनी माया जवनिका सदयितः ब्रह्मेशादिसुरव्रजः त्वद्दास-दासीगणः श्रीः इत्येवं च ते नाम (तदा) वयं त्वां कथं ब्रमः ॥१॥

भाषानुवाद :- हे भगवति ! हे परिपूर्णषड्गुणवाली ! हे मातः ! पुरुषोत्तम जो क्षर अक्षरसे अर्थात् क्षेत्रज्ञ और कूटस्थ नाम प्रकृतिविनिर्मुक्त आत्मस्वरूप इन दोनोंसे अतीत लोक वेद प्रसिद्ध परम पुरुष हैं सो आपके कान्त नाम प्रिय पति

---

१ यवनिका इत्यापि पठ्यते ।

हैं तथा फणिपति जो शेषजीहैं सो आपकी शय्या और आसनरूप हैं तथा वेदात्मा नाम गमन समयमें जिनके पक्षोंसे वेदकी ध्वनि होती है ऐसे पक्षियोंके ईश्वर जो गरुडजी हैं सो आपके वाहन हैं तथा विचित्र भोग्य भोगोपकरणादि रूप नाना प्रकारके परिणामको प्राप्त होनेवाली अतएव जगत्को मोह करानेवाली जो माया नाम प्रकृति है सोई आपकी जवनिका नाम परदा है जैसे प्रथम दृष्टिके परदापर रुक जानेसे भीतरका पदार्थ देखनेमें नहीं आवे है इसी प्रकार विचित्रस्त्रक्चन्दनवनितादिरूप परिणामको प्राप्त होनेवाली मायापर दृष्टि रुक जाती है तब तत्त्व विवेचन नहीं होनेसे आप दोनों दंपतीके स्वरूपको सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी लोक नहीं देख सकता है, ऐसी मायाका परदा डालकर आप विराजो हौ, तथा अपनी २ स्त्रियोंकरके सहित ब्रह्मा महादेव प्रभृति देवोंके जो समुदाय हैं वे आपके दास और दासियोंके समूह हैं, तथा आपका 'श्री' ऐसा नाम है, तब फिर हम सब लोग आपको कथन करनेको भी कैसे समर्थ हो सकते हैं ॥१॥

अव०- अब श्रीयामुनाचार्य स्वामी द्वितीय श्लोकमें यह कहते हैं कि-यद्यपि आपकी महिमा निरवधिक है तथापि हम आपके दास होनेसे आपकी स्तुति कर सकते हैं जैसे लोकमें

राजाओंका वैभव अन्य लोकोंके अगोचर होनेपर भी निजराजभृत्योंको कुछ भी गोप्य नहीं रहता है, इसीसे हम आपके दास निर्भय होकर आपकी स्तुति करते हैं -

यस्यास्ते महिमानमात्मन इव त्वद्वल्लभोऽपि
प्रभुर्नाऽलं मातुमियत्तया निरवधिं नित्यानु-
कूलं स्वतः ॥ तां त्वां दास इति प्रपन्न इति च
स्तोष्याम्यहं निर्भयो लोकैकेश्वरि ! लोक-
नाथदयिते ! दान्ते दयां ते विदन् ॥२॥

अन्व०- हे लोकैकेश्वरि ! हे लोकनाथदयिते ! यस्याःते स्वतः नित्यानुकूलं निरवधिं महिमानं प्रभुरपित्वद्वल्लभः आत्मनः (महिमानम्) इव इयत्तया मातुं न अलं तां त्वां दास इति (हेतोः) प्रपन्न इति च (हेतोः) दान्ते ते दयां विदन् निर्भयः अहं स्तोष्यामि ॥२॥

भाषानुवाद :- हे लोकैकेश्वरि ! हे लोकनाथदयिते ! जिन आपकी स्वयं नित्य अनुकूल तथा अवधिशून्य ऐसी महिमाको परमसमर्थ होकर आपके वल्लभ (प्रियपति) श्रीमन्नारायण अपनी महिमाके सदृश इयत्ताकरके (अर्थात् इतनी महिमा है ऐसे परिच्छेदकरके) मापनेको नहीं समर्थ होते

हैं, तिन आपकी स्तुतिको मैं दास हूं इस हेतुसे तथा प्रपन्न नाम शरणागत हूं इस हेतुसे दीनावस्थापन्नप्रपन्नके विषयमें आपकी निःस्वार्थ दयाको जानता हुआ निर्भय होकर मैं करता हूं ॥२॥

अव०- तृतीयश्लोकमें श्रीयामुनमुनि यह कहते हैं कि, परमात्माको उत्पत्तिपालनादिके हेतुत्वकी पूर्ति श्रीमहालक्ष्मीः के कटाक्षके सापेक्ष है -

ईषत्त्वत्करुणानिरीक्षण सुधासन्धुक्षणाद्रक्ष्यते,
इष्टं प्राक्तदलाभतस्त्रिभुवनं सम्प्रत्यनन्तोद-
यम् ॥श्रेयो न ह्यरविंदलोचनमनःकान्ता-
प्रसादादृते, संसृत्यक्षरवैष्णवाध्वसु नृणां सम्भा-
व्यते कर्हिचित् ॥३॥

अन्व ०- (हे देवि!) त्रिभुवनम् ईषत्त्वत्करुणानिरीक्षण-सुधासन्धुक्षणात् सम्प्रति अनन्तोदयं (सत्) रक्ष्यते (यत्) प्राक्तदलाभतः नष्टम् (आसीत्) अरविन्द-लोचनमनः कान्ताप्रसादात् ऋते नृणां संसृत्यक्षरवैष्णवाध्वसु कर्हिचित् श्रेयः न हि संभाव्यते ॥३॥

भाषानुवाद :-हे देवि ! हे मातः ! त्रिभुवन जो यह समस्त जगत है सो किंचित् आपकी करुणापूर्वक निरीक्षणरूप अमृतके सिंचन होनेसे इस समयमें अनंत उदयवाला होकर रक्षित हो रहा है, जो जगत् पहिले आपके कारुण्यकटाक्षामृतके सिंचनके अलाभ से नष्ट हो गया रहा है, अरविन्दसदृश लोचनवाले श्रीमन्नारायणके मनको अति कमनीय रूपगुणादिवाली श्रीमहालक्ष्मीजीकी प्रसन्नताके विना बद्ध मुक्त नित्यरूप त्रिविधचेतनोंको भी संसारका ऐश्वर्य कैवल्य भगवत्प्राप्ति भगवत्कैंकर्यके मार्गमें कदाचित्भी श्रेयका अर्थात् सुख अथवा सुखके साधनका संभव नहीं होता है ॥३॥

अव०-चतुर्थश्लोकमें श्रीयामुनमुनि श्रीमहालक्ष्मीको भगवान्कें साथ सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्थामें संश्लिष्ट रहनेसे पूर्ण घटकत्व कहते हैं -

शांताऽनन्तमहाविभूति परमं यद्ब्रह्म रूपं हरे -
र्मूर्त्तं ब्रह्म ततोऽपि यत्प्रियतरं रूपं यदत्यद्भु-
तम् । यान्यन्यानि यथासुखं विहरतो रूपाणि
सर्वाणि तान्याहुस्स्वैरनुरूपरूपविभवैर्गाढोप-
गूढानिते ॥४॥

अन्व०- हरेः शान्ताऽन्तमहाविभूति परमं यद् ब्रह्मरूपं (तथा) ततोऽपि तत्प्रियतरं यद् अत्यद्भुतं मूर्तं ब्रह्मरूपं (तथा) यथासुखं विहरतः (हरे) यानि अन्यानि रूपाणि तानि सर्वाणि (परमर्षयो वेदा वा) स्वैरनुरूपरूपविभवैः गाढोपगूढानि आहुः ॥४॥

भाषानुवाद :- अपने आश्रितोंके दोषोंको हरनेवाले श्रीहरिका शान्त नाम अपक्षयादिविकाररहित अनन्त नाम देशकाल वस्तुकृतपरिच्छेदरहित महाविभूतिनाम त्रिपाद्विभूति और लीलाविभूति एतदुभयविभूतिविशिष्ट, परम नाम चेतनाचेतनसे विलक्षण जो सकल वेदवेदान्तप्रसिद्ध ब्रह्म नाम बृहत्त्व बृहणंत्वविशिष्ट ज्ञानानन्दरूप दिव्यात्मस्वरूप है, तथा ज्ञानानन्दात्म कदिव्यात्मस्वरूपसे भी तिन हरिको प्रियतर नाम अति प्रीतिका विषय जो श्रुतिस्मृतिपंचरात्रादिशास्त्रप्रसिद्ध सन्निवेश गुणप्रभावादिकरके अतिआश्चर्यकर मूर्त्त नाम स्पर्शरूपादियुक्त परंपदपर्यंकादिदेशपरिच्छेदयुक्त ब्रह्म नाम अतिबृहत्त्वाश्रित ज्ञानविकाशका हेतु अर्थात् विभु (सर्व देशकालवस्तुको विषयकरनेवाले) ज्ञानका हेतुभूत रूप नाम दिव्यमंगलविग्रह है, तथा यथासुख विहार करनेवाले श्रीहरिके

और जो अन्य रूप हैं अर्थात् सन्निवेशवर्णादिके वैचित्र्यसे परवासुदेवरूपसे विलक्षण तथा परवासुदेवके अंशभूत ऐसे और जो अनिरूद्धादिव्यूह रामकृष्णादिविभवरूप हैं वे सब (अर्थात परवासुदेवके स्वरूप और रूप, तथा व्यूहविभवके स्वरूप और रूप) भगवदभिमत स्वरूपरूपगुणवाली ऐसी आपके स्वकीय असाधारण भगवदभिमत स्वरूप स्वभाव विग्रहादि रूपवैभवोंसे गाढोपगूढ है अर्थात् वियोगके अयोग्य है इस प्रकार वेदविदग्रेसर वाल्मीकि पराशर पाराशर्यादिमहर्षिलोग अथवा वेद कहते हैं जैसे सुन्दरकांडमें श्रीजानकीका वचन है, कि (अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा) मैं राघवसे इसप्रकार अनन्या हूं अर्थात् अवियोगवाली हूं कि जैसे सूर्यके सूर्यकी प्रभा (कांति) कभी वियोगको नहीं प्राप्त होती है इत्यादिक। तथा श्रीविष्णुपुराणमें श्रीपराशरमहर्षिने भी कहा है कि (देवत्वे देवदेहेयं मानुषत्वे च मानुषी इत्यादि) हे मैत्रेय ! जब जब भगवान् देव मनुष्यादि रूपोंको धारण करते हैं तब तब आप श्रीलक्ष्मीजी श्रीहरिके अनुरूपविग्रह को धारण करती हैं, तात्पर्य यह कि सर्वदेश सर्वकाल सर्वावस्थामें श्रीजी परमात्माके समीप घटक होकर रहनेवाली हैं हम सबोंकी माता हैं ऐसे भारी वसीला होनेपरभी हमलोग परमात्माकी

शरणागति नहीं करें तो हमारे सदृश दुर्भागी कौन है? तस्मात् सबोंको उचित है कि-मनुष्यजन्मको प्राप्त होकर श्रीजीके पुरुषकारपूर्वक अवश्य परमात्माकी शरणागति करें ॥४॥

अव ०- यह लक्ष्मीस्तोत्र श्रीकांचीपुरीमें विराजमान श्रीवरदराजभगवान्की लक्ष्मीश्रीवरदवल्लभाअम्बाके विषयमें है यह जनावनेको इसश्लोकमें श्रीवरदवल्लभालक्ष्मीको वन्दन करते हैं ॥

आकारत्रयसम्पन्नामरविन्दनिवासिनीम् ॥
अशेषजगदीशित्रीं वन्दे वरदवल्लभाम् ॥५॥

इति श्रीयामुनमुनिप्रणीतं श्रीवरदवल्लभास्तोत्रं समाप्तम् ।

अन्व०- आकारत्रयसम्पन्नाम् अरविंदनिवासनीम् अशेषजगदीशित्रीं वरदवल्लभाम् (अहम्) वन्दे ॥५॥

भाषा०-अनन्यशेषत्व अनन्यभोग्यत्व अनन्यशरण्यत्व रूप तीन आकारोंसे युक्त अरविन्द जो कमल तिनमें निवास करनेवाली अथवा अरविन्दको विलासके लिये हस्तमें ग्रहण-करनेवाली तथा समस्तजगत्की नियमन करनेवली जो

---

१ विलासिनीमिति पाठान्तरम् ।

श्रीवरदवल्लभा लक्ष्मी हैं तिनको मैं वन्दन करता हूं ॥

इति श्रीवरदवल्लभास्तोत्रप्रदीपिकाभाषाटीका समाप्त।

॥ समाप्तमिदं स्तोत्रम् ॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमो नमः ॥

अथ श्रीमद्‌आलवन्दारस्तोत्रम् ।

हिन्दीटीकासहितम् ।

श्रीरामानुजतरणिर्जीयादज्ञानति मिरारिः ॥
यद्धृदयपुण्डरीके निवसति नितरां सपुण्डरीकाक्षः ॥१॥
नत्वा श्रीरुक्मिणीकान्तं स्तोत्ररत्नप्रदीपिकाम् ॥
भाषां भागवताचार्यः कुर्वे स्वल्पधियाम्मुदे ॥२॥

अवतरण : समस्तत्याज्यप्राकृतगुणोंसे रहित और अनंतदिव्यगुणगणोंके महासागर ऐसे लक्ष्मीपति पूर्णपुरूषोत्त्तम श्रीमन्नारायणकी दो विभूति हैं, इसीसे उनका नाम उभयविभूतिनाथ भी है, उनमें एक त्रिपाद्‌विभूति और दूसरी लीलाविभूति इस प्रकार विख्यात हैं, मुक्त पुरुष जब मोक्षको जाता है तब ब्रह्म लोकसे ऊपर ब्रह्मांडके आवरण भेदन करनेके पश्चात् विरजानामकी नदी आती है, उस विरजानदीके ऊपर त्रिपाद्विभूति है जिसको परमव्योम परमपद वैकुंठ इत्यादि शब्दोंसे भी कहते हैं। उस त्रिपाद्विभूतिकी केवल नीचेकी तरफ

वही विरजानदी सीमा है, ऊपर भागमें तथा चारों तरफ़सीमा नहीं है ऐसी वह अनंत विभूति है कि जिसमें अत्यंत अद्भुत वाणी मनके अगोचर ऐश्वर्यवाले साकेत लोक गोलोक प्रभृति असंख्यात दिव्य लोक हैं, जिन सब लोकोंमें आपही श्रीमन्नारायण अपने नित्यमुक्त भक्तोंके अभीष्ट रूपको धारणकर नित्य दिव्य लीला करते हैं। जहां कालकृत परिणाम नहीं जहां चन्द्रसूर्यादिककीअपेक्षा नहीं वह विभूतिही स्वतः स्वयं प्रकाशवाली है उस विभूतिका वैभव ब्रह्मरुद्रसनकादिकोंके भी मनवाणीका अगोचर है। जैसी ऊपर वह त्रिपाद्विभूति अनंत है इसी प्रकार यह लीला विभूति (संसार) भी चारो तरफसे तथा नीचेकी तरफसे सीमा रहित है, केवल ऊपरकी तरफसे विरजानदी इसकी सीमा है, इस विभूतिमें भी पंचाशत्कोटियोजनकी विस्तार वाली जिसमें पृथिवी है ऐसे पृथिवीसे दश दश गुणित ऊपर ऊपर सप्त आवरणवाले ब्रह्मांडोंकी संख्या नहीं हैं, परंच इन ब्रह्मांडोंको प्राकृतिक प्रलयमें प्रकृतिमें लीन हो जानेसे तथा सृष्टिकालमें प्रकृतिसे उत्पन्न होनेसे इस विभूतिको अनित्य और प्राकृत कहते हैं, त्रिपाद्विभूतिको सदा अपूर्व प्रकारसे स्थित रहनेसे नित्य और अप्राकृत (दिव्य) कहते हैं। वेदमें कहा है "पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं

दिवि''-तात्पर्य यह कि अनंत कोटि ब्रह्मांडोंवाली लीलाविभूतिमें एक भाग वैभव है, और त्रिपाद्विभूतिमें तीन भाग वैभव है इसीसे उसका नाम त्रिपाद्विभूति है. यद्यपि लीलाविभूतिमें स्वर्गलोकसे ऊपर २ ब्रह्मलोकपर्यंत अति उत्तमोत्तम वैभव है कि जिनको देखकर मारूति सदृश परमविरक्तका मन चलित भया तथापि त्रिपाद्विभूतिकी अपेक्षासे वे अनितुच्छ हैं विष्णुपुराणमें कहा है "एते वै निरयास्तात स्थानस्य परमात्मनः'' पराशरमहर्षिने मैत्रेयसे कहा कि हे तात! ये ब्रह्मलोकादिक जिस परमात्माके स्थानकी अपेक्षासे नरकसदृश हैं, ऐसी नित्यविभूतिश्रीवैकुंठमें विराजमान परमात्मा अपनी नित्य विभूतिके सुख ानुभव करनेके योग्य हो कर भी तादृशसुखसे प्रच्युत ऐसे लीलाविभूतिके चेतनोंको देख कर प्रलयकालमें करणकलेवररहित अचेतनसदृश उनजीवोंको करणकलेवरसंयुक्त करके उनके अभीष्टप्राप्तिके लिये अपने संकल्पमात्रसे वारंवार सृष्ट्यादिलीला करते हैं। परंच अनादिकर्मरूप अविद्याके प्रवाहमें पडे हुए आपसे विमुख अत एव गर्भजन्मजरामरणादिक्लेशोंसे पीडितहोकर भी दुःखहीमें सुखमाननेवाले अपने हितको आप नहीं जाननेवाले ऐसे उन जीवोंपर फिर निर्हेतुक कृपाकर परमदयालु परमात्मा सत् शास्त्रको प्रगटकर रामकृष्णादि अवतार

लेकर मनुष्यादिरूपधारणकरके उसशास्त्रके अनुगुण आप स्वयं आचरणकर कभी दिखाते हैं तो भी इन जीवोंको शास्त्रका तात्पर्य यथावत् नहीं ज्ञात होनेसे परमात्माकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है ऐसा जानकर परमकारुणिक श्रीरामानुजाचार्यके परमाचार्य अर्थात् श्रीरामानुजस्वामीके गुरु श्रीमहापूर्णाचार्यस्वामी उनके गुरु श्रीयामुनाचार्यस्वामीने भगवत्कृपाबलसे सर्ववेदशास्त्रके रहस्यार्थको जानकर एक इसस्तोत्ररत्नग्रन्थकोही सकलशास्त्रके सारार्थको जनावनेवाला तथा पठनादिसे संसारके बन्धनको छुडानेवाला निश्चयकर प्रगट किया है जैसे कहा है कि "प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्तुश्च प्रत्यगात्मनः । प्राप्त्युपायं फलं प्राप्तेस्तथा प्राप्तिविरोधी च ॥ वदन्ति सकला वेदाः सेतिहासपुराणकाः । मुनयश्च महात्मानो वेदवेदान्तवेदिनः" तात्पर्य यह कि-वेदादिसकलशास्त्रोंमें इन पांच अर्थोंका ही प्रतिपादन है- परस्वरुप, स्वरूप, उपायस्वरूप, फलस्वरूप, और विरोधिस्वरूप, सो इस स्तोत्रमें "कः श्रीः श्रियंः" इत्यादिकसे परस्वरुपका "न धर्मनिष्ठोऽस्मि" इत्यादिकसे स्वस्वरूपका "त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये" इत्यादिकसे उपायस्वरूपका 'नित्यकिंकरः प्रहर्षयिष्यामि' इत्यादिकसे फलस्वरूपका तथा न "देहं न प्राणान" इत्यादिकसे विरोधि

स्वरूपका प्रतिपादन है इस प्रकार अर्थपंचकका प्रतिपादन होनेसे सकलवेदार्थ इसमें आयगया इसीकारण यह ग्रन्थ सर्वार्थपरिपूर्ण है। और इसको स्तोत्ररूप होनेसे (किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारवन्धनात्) लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्) किसके जपकरनेसे जंतु जन्मादिसंसारके वन्धनसे छूटता है- सर्वेश्वरकी स्तुति करनेसे जीव सर्व दुःखसे छूट जाता है, इस प्रकारके युधिष्ठिर और भीष्मपितामहके प्रश्नोत्तरानुसार संसारका बन्धननिवर्त्तकत्वभी सिद्ध है । ऐसे स्तोत्ररत्नको निर्माणकर श्रीयासुनाचार्य स्वामी परमआनन्दको प्राप्त होते भये ।। अब यहां प्रारंभमें आदिके अनुष्टुप् तीन श्लोक स्तोत्रसे बहिर्भूत हैं परंच श्रीयामुनाचार्य स्वामीके परम उपकारस्मरणार्थ उनके विषयमें प्रेमवाले किसी महानुभावके किये भये हैं, उससे स्तोत्रके साथही पठन करनेके योग्य हैं, तहां प्रथम श्लोकमें श्रीयासुनमुनिका महोपकारस्मरणपूर्वक वन्दन करते हैं-

स्वादयन्निह सर्वेषां त्रय्यन्तार्थं सुदुर्ग्रहम् ।।
स्तोत्रयामास योगीन्द्रस्तं वन्दे यामुना-
ह्वयम ।।१।।

अन्वय :- (यो यामुनाह्वयः) योगीन्द्रः सुदुर्ग्रहं त्रय्यन्तार्थम् इहं सर्वेषां स्वादयन् स्तोत्रयामास तं यामुनाह्वयम्

(अहम्) वन्दे ॥१॥

भाषानुवाद :- योगियोंमे श्रेष्ठ जिन श्रीयामुनाचार्य स्वामीने जो अत्यंत दुःखसे ग्रहण करनेंमें (समझनेमें) आवे ऐसेवेदांतार्थको इस लोकमें वेदकी तरह त्रैवर्णिककी अपेक्षाका नियम न रखकर रूचिमात्र साधनवालेसर्वजनोंको आस्वादन करावनेके लिये स्तोत्र रूपसे प्रगट किया उन श्रीयामुनमुनिको मैं वन्दन करता हूं ॥१॥

अवतरण :- स्तोत्र रत्नके अनुसंधान करनेसे भया जो प्रेमका उत्कर्ष उसके वश होकर इस श्लोकमें श्रीयामुनमुनिको वारंवार नमस्कार करते हैं -

नमो नमो यामुनाय यामुनाय नमोनमः ॥
नमो नमो यामुनाय यामुनाय नमोनमः ॥२॥

अन्वय :- यामुनाय नमो नमः(अस्तु)इत्यादि ॥२॥

भाषानुवाद :- श्रीयामुनाचार्य स्वामीको वारंवार नमस्कारहोय ऐसा चारों पादोंका अर्थ है ॥२॥

अवः-तृतीय श्लोकमें श्रीयामुनमुनिके शिष्यरूप अपने गुरुको नमस्कार करते हैं -

नमो यामुनपादाब्जरेणुभिः पावितात्मने ॥

विदिताखिलवेद्याय गुरुवे विदितात्मने ॥३॥

अन्व०-यामुनपादाब्जरेणुभिःपावितात्मने
विदिताखिलवेद्याय विदितात्मने गुरवे
नमः(अस्तु) ॥३॥

भाषाः- श्रीयामुनमुनिके चरणारविंदकी रजसे पवित्र देहवाले, जाननेके योग्य जो अर्थ तिस संपूर्णके जाननेवाले, जीवात्मा और परमात्माके स्वरूपको यथार्थ जाननेवाले, ऐसे हमारे गुरुको नमस्कार होय ॥३॥

अव०- अव यहांसे श्रीयामुनाचार्यस्वामीकी कृति है, श्रीयामुनाचार्यस्वामी सकलचेतनों के उद्धारार्थ तत्त्व हित और पुरुषार्थका प्रकाश करनेवाले ऐसे आपने स्तोत्रके आरंभमें ग्रंथकी निर्विघ्नपरिसमाप्तिके लिये अपने परमगुरु के भी गुरु श्रीनाथमुनिस्वामीका नमस्कार रूप मंगलाचरण तीन श्लाकोंसे करते हैं, यहां इस श्लोकमें श्रीनाथमुनिस्वामीका आत्मगुणरूपसंपत्तिकी परा काष्ठा (अंतिम सीमा) कहते हैं-

नमोऽचिन्त्याद्भुताऽक्लिष्टज्ञानवैराग्यराशये ॥
नाथाय मुनयेऽगाधभगवद्भक्तिसिन्धवे ॥४॥

अन्व-अचिन्त्याद्भुताक्लिष्टज्ञानवैराग्यराशये
अगाधभगवद्भ-क्तिसिन्धवे नाथाय मुनये

नमः (अस्तु) ॥४॥

भाषा०-अचिंत्य अद्भुत और अक्लिष्ट अर्थात् चिंतनेमें नहीं आवे और आश्चर्यकर तथा सुखसाध्य (ये तीनों विशेषण ज्ञान और वैराग्य दोनोंके हैं) ऐसा जो चेतन अचेंतन और ईश्वरविषयकज्ञान, और उक्तप्रकारका जो त्याज्यविषयमें वैराग्य(अप्रीती) तिन दोनोंकी राशिरूप, तथा अगाध जिसमें बडे २ ज्ञानियोंकी विचारकी वल्ली नहीं लगे ऐसी गंभीर जो भगवद्भक्ति नाम षड्गुणपरिपूर्ण परात्पर श्रीमन्नारायणके विषयमें जो निरंतर निरतिशय निरवधिक अनुराग उसके समुद्ररूप ऐसे मननस्वभाववाले श्रीनाथमुनिस्वामिको नमस्कार होय ॥४॥

अव०-श्रीयमुनाचार्यस्वामी फिर श्रीनाथमुनिस्वामीको नमस्कार करते हैं -

तस्मै नमो मधुजिदंघ्रिसरोजतत्त्वज्ञानानुरा-
गमहिमातिशयान्तसीम्ने ॥ नाथाय नाथमु-
नयेऽत्र परत्र चाऽपि नित्यं यदीयचरणौ
शरणं मदीयम् ॥५॥

अन्व ०- यदीयचरणौ अत्र परत्र चाऽपि नित्यं मदीयं शरणं (भवति) मधुजिदङ्घ्रिसरोजतत्त्वज्ञानाऽनुरागमहिमा-

तिशयान्तसीम्ने ॥ नाथाय तस्मै नाथमुनये नमः (अस्तु) ॥५॥

भाषा ०- जिनके श्रीचरण इस लीलाविभूतिमें तथा नित्य विभूतिमें हमारे रक्षक हैं, और जो मधुसूदन भगवानके चरणारविंदके तत्त्वज्ञान अनुराग और महिमाके अतिशय (अधिकता) के अंतकी सीमारूप है, ऐसे हमारे नाथ (स्वामी) जो श्रीनाथमुनिस्वामी हैं, तिनको नमस्कार होय। इस पांचवे श्लोकसे उन्नीसवें श्लोकपर्यंत वसंततिलका वृत्त है ॥५॥

अव ०- फिरभी प्रेमकी अधिकतासे श्रीनाथमुनिस्वामीको नमस्कार करते हैं-

भूयो नमोऽपरिमिताऽच्युतभक्तितत्त्वज्ञाना-
ऽमृताब्धिपरिवाहशुभैर्वचोभिः ॥ लोकेऽवती-
र्णपरमार्थसमग्रभक्तियोगाय नाथमुनये य-
मिनां वराय ॥६॥

अन्व०- अपरिमिताऽच्युतभक्तितत्त्वज्ञानाऽमृताब्धि परिवाहशुभैःवचोभिःलोकेअवतीर्णपरमार्थसमग्रभक्तियोगाय यमिनां वरायं नाथमुनये भूयो नमः(अस्तु) ॥६॥

---

१ अपने भक्तोंके कार्यसे कभी न चूकनेवाले ।

भाषा ०- अपरिमित जो अच्युतकी भक्ति और तत्त्वज्ञान सोई भया अमृतका समुद्र, उसके प्रवाहरूप अपनी सुन्दरश्री सूक्तिसे अवतीर्ण (प्रकट) भयो है उत्कृष्ट अर्थरूप संपूर्ण भक्तियोग जिनसे ऐसे योगीजनोंके श्रेष्ठ जो श्रीनाथमुनिस्वामी तिनको नमस्कार होय ॥६॥

अव ०-इसप्रकार तीनश्लोकोंमे श्रीनाथमुनिस्वामीको नमस्कार करके श्रीविष्णुपुराणके निर्माण करनेवाले श्रीपराशरमहर्षिको नमस्कार करते हैं-

> **तत्त्वेन यश्चिदचिदीश्वरतत्स्वभावभोगाऽपव-**
> **र्गतदुपायगतीरुदारः ॥ सन्दर्शयन्निरमिमीत**
> **पुराणरत्नं तस्मै नमो मुनिवराय पराश-**
> **राय ॥७॥**

अन्व०-यः उदारः चिदचिदीश्वरतत्स्वभाव-भोगापवर्गतदुपायगतीःतत्त्वेन सन्दर्शयन् पुराणरत्नंनि-रमिमीत तस्मै मुनिवराय पराशराय नमः (अस्तु) ॥७॥

भाषानुवाद०- परमउदार जिन पराशर महर्षिने चेतन अचेतन ईश्वर ये तीनों तत्त्व, इनके स्वभाव, इसलोकसे लेकर ब्रह्मलोक पर्यन्तका भोग, तथा अपवर्ग नाम कैवल्य और

परमपद, और इनकी प्राप्तिके उपाय, तथा इनके जानेकी धूमादि अर्चिरादि गति इन सबोंका यथार्थज्ञान करावनेके लिये पुराणोंमे रत्नरूप श्रीविष्णुपुराणको निर्मित किया ऐसे मुनिश्रेष्ठ श्रीपराशर मुनिको नमस्कार होय ॥७॥

अव ०- इस श्लोकमें श्रीयामुनमुनि श्रीपरांकुशमुनीन्द्र (श्रीशठकोपस्वामी) के चरणयुगलको नमस्कार करतेहैं -

माता पिता युवतयस्तनया विभूतिः सर्व
यदेव नियमेन मदन्वयानाम् ॥ आद्यस्य नः
कुलपतेर्वकुलाभिरामं श्रीमत्तदङ्घ्रियुगलं
प्रणमामि मूर्ध्ना ॥८॥

अन्व०- यदेव नियमेन मदन्वयानां माता पिता युवतयः तनया विभूतिः सर्वम् (अभूत्) आद्यस्य नः कुलपतेः वकुलाभिरामं श्रीमत् तत् अङ्घ्रियुगलं मूर्ध्ना प्रणमामि ॥८॥

भाषा० जो श्रीपरांकुशमुनिके चरणयुगलही, नियमकरके हमारे वंशमें उत्पन्न होनेवालोंके मातातुल्य प्रिय करनेवाले, पितातुल्य हित करनेवाले, युवतिके तुल्य सुख करनेवाले, पुत्र और विभूति (ऐश्वर्य) के तुल्य संतोष करनेवाले, और जो जो अपेक्षितपदार्थ हैं तिन सबहीके तुल्य होतेभये, ऐसे प्रथमाचार्य

और हमारे कुल (श्रीवैष्णवकुल) के पति जो श्रीपरांकुशमुनि तिनके वकुलपुष्पोंसे मनोहर जो श्रीयुक्त दोनों चरण हैं तिनको मैं मस्तकसे प्रणाम करता हूं ॥८॥

अव ०- अब श्रीयामुनमुनि यहांसे लेकर स्तोत्रकी समाप्ति पर्यंत श्रीमन्नारायणके स्वरूप रूप गुण विभूति ऐश्वर्यके वर्णनपूर्वक स्तुति करते हैं -

यन्मूर्ध्नि मे श्रुतिशिरस्सु च भाति यस्मिन्न-
स्मन्मनोरथपथः सकलः समेति ॥ स्तोष्यामि
नः कुलधनं कुलदैवतं तत् पादारविन्दमर-
विन्दविलोचनस्य ॥९॥

अन्व ०- अरविन्दविलोचनस्य यत् (पादारविंदे) मे मूर्ध्नि श्रुतिशिरस्सु च भाति यस्मिन् (पादारविंदे) सकलः अस्मन्म-नोरथपथः समेति नः कुलधनं कुलदैवतं तत्, (अरविंदविलोचनस्य) पादारविंदम् (अहम्) स्तोष्यामि ॥९॥

भाषा०- कमलदललोचन अर्थात् सर्वाधिकनेत्रसौन्दर्यवाले श्रीमन्नारायणका जो चरणारविंद हमारे शिरपर तथा वेदके शिरपर शोभित होते हैं, और जिन चरणारविन्दोंमें हमारे संपूर्ण मनोरथके पंथ संगत होवै हैं, ऐसे हमारे कुलके धनरूप

तथा हमारे कुल देवतारूप जो श्रीमन्नारायणके चरणारविन्द तिनकी मैं स्तुति करता हूं ॥९॥

अव०- इस श्लोकमें श्रीयामुनाचार्य स्वामी स्तोत्र करनेमें अपनी अशक्ति प्रगट करते हैं -

तत्त्वेन यस्य महिमार्णवशीकराणुः शक्यो न मातुमपि शर्वपितामहाद्यैः ॥ कर्त्तुं तदीयमहिमस्तुतिमुद्यताय मह्यं नमोऽस्तु कवये निरपत्रपाय ॥१०॥

अन्व०- यस्यमहिमार्णवशीकरणाणुःशर्वपितामहाद्यैः अपि तत्त्वेन मातुं न शक्यः तदीयमहिमस्तुतिं कर्तुम् उद्यताय निरपत्रपाय कवये मह्यं नमः अस्तु ॥१०॥

भाषा०- जिन श्रीमन्नारायणके महिमा रूप समुद्रके अतिसूक्ष्म जलकणकाभी रुद्र चतुर्मुखादि कभी यथार्थपनेसे परिमाण करनेको नहीं समर्थ हो सकते हैं । उनके प्रभावकी स्तुति करनेको उद्युक्त (तैयार) होनेवाले ऐसे निर्ल्लज्ज कवि जो हम हैं तिन हमारेको भी नमस्कार होय, भाव यह कि ब्रह्मः रुद्रादिकोंसे जिसकी स्तुति की तो कौन बात है परंच साधारण रीतिसे भी जो भगवान्की महिमा परिमाणमें न आसके मादृश

मूढजन उस महिमाकी कैसे स्तुति कर सकते हैं ॥१०॥

अव ०- इस श्लोकमें श्रीयामुनमुनि, जब उनकी स्तुति ऐसी अशक्य है तो फिर तुम जानकर भी उसमें क्यों प्रवृत्त होते हो ? इस शंकाका समाधान करते हुए किसी प्रकार अपनेको स्तोत्र करनेका अधिकार बताते हैं -

यद्वा श्रमावधि यथामति नाप्यशक्तस्तौ-
म्येवमेव खलु तेऽपि सदा स्तुवंतः ॥ वेदाश्च-
तुर्मुखमुखाश्च महार्णवांतः को मज्जतोरणु-
कुलाचलयोर्विशेषः ॥११॥

अन्व०- यद्वा अशक्त अपि (अहम्) श्रमावधि यथामति वा स्तौमि, सदा स्तुवन्तःवेदाःचतुर्मुखमुखाश्च एवमेव (स्तुवन्ति) (तथाहि) महार्णवान्तः मज्जतोः अणुकुलाचलयो को विशेषः (अस्ति) (न कोऽपि) ॥११॥

भाषा ०- अथवा अशक्त भी मै हूं तथापि जहांतक मेरेसे श्रम होसके और जितनी मेरी मति है उतनी तो स्तुति करता हूँ। क्योंकि सदा स्तुति करनेवाले वेद और ब्रह्मादिक भी तो श्रमावधि और यथामतिही स्तुति करते हैं तो फिर हम अपने श्रमावधि और यथामति क्यों स्तुति न करें ? जैसे किमहासमुद्रमें परमाणु और कुलाचलपर्वत इन दोनोंके डूबनेमें क्या विशेष

है ? बल्कि गौरव होनेसे पर्वत जल्दी डूबता है ॥११॥

अव ०- अब श्रीयामुनाचार्य स्वामी इस श्लोकमें यह प्रतिपादन करते हैं, कि - भगवान्के स्तोत्र करनेमें जैसे हम अशक्त हैं इसी प्रकार ब्रह्मादिक भी अशक्त हैं इस अंशमें तो तुल्यताही है, परंच स्तुति करनेसे जैसे शीघ्र हम दयाके पात्र हो सकते हैं तिस प्रकार ब्रह्मादिक नहीं हो सकते इस हेतुसे भी हमको भगवत् स्तुति करना उचित है -

किञ्चैष शक्त्यतिशयेन न तेऽनुकम्प्यः स्तो-
ताऽपि तु स्तुतिकृतेन परिश्रमेण ॥ तत्र श्रम-
स्तु सुलभो मम मन्दबुद्धेरित्युद्यमोऽयमुचितो
मम चाब्जनेत्र ! ॥१२॥

अन्व०- (हे) अब्जनेत्र ! किञ्च एषः स्तोता शक्त्यतिशयेन ते अनुकम्प्यो न, अपि तु स्तुतिकतेन परिश्रमेण (अनुकम्प्यो भवति) तत्र मन्दबुद्धेः मम श्रमः सुलभःइति अयम्उद्यमःमम उचितः (अस्ति) ॥१२॥

भाषा ०- हे कमलदल लोचन ! यह स्तुति करनेवाला चेतन सामर्थ्यकी अधिकतासे आपकी दयाका विषय नहीं हो सकता है, किं तु स्तुति कृत परिश्रमसे अर्थात् स्तुति करते २

थकजाने से दयनीय (दयाके योग्य) होता है, तहां मेरेको श्रम होना सुलभ है क्योंकि-मैं मंदबुद्धि हूं, इस हेतुसे यह स्तुति करनेका उद्यम मेरे अनुरूप है। भाव यह कि - ब्रह्मादिक बडे बुद्धिशाली हैं उनको जल्दी श्रांति नहीं होती, मैं अल्पबुद्धि हूं अतएव थोडीसी स्तुति करनेसे थक जाऊंगा, तब परमदयालु भगवान् मेरी श्रांति देखकर प्रथम मेरे ऊपर कृपा करेंगे, पश्चात् जब ब्रह्मादिक थकेंगे तब उनपर कृपा होगी, तस्मात् मेरे सदृश अल्पबुद्धिवाले चेतनको भगवत्स्तुति करना बहुत अनुकूल है ॥१२॥

अव ०- जब आप अपनी निर्हेतुक कृपासे सबहीकी रक्षा करते हैं तब आपको शरणागतोंकी रक्षा करना कौन विचित्र बात है ? यह कहते हैं -

नावेक्षसे यदि ततो भुवनान्यमूनि नालं
प्रभो ! भवितुमेव कुतः प्रवृत्तिः ? ॥
एवं निसर्गसुहृदि त्वयि सर्वजन्तोः स्वामिन्न
चित्रमिदमाश्रितवत्सलत्वम् ॥१३॥

अन्व ०- (हे) प्रभो ! त्वम्) अमूनि भुवनानि न अवेक्षसे यदि ततः (इमानि) भवितुम् एव न अलम् ।

प्रवृत्तिः कुतः । एवं सर्वजन्तोः निसर्गसुहृदि त्वयि इदम् आश्रितवत्सलत्वं चित्रं न (भवति) ॥१३॥

भाषा०- हे प्रभो ! आप इन सब भुवनोंका अपने संकल्परूप कटाक्षसे यदि नहीं अवलोकन करते ? तब तो यह सब उत्पन्न होनेको भी समर्थ नही रहे, तो फिर उत्पन्न होनेके पश्चात् होनेवाली प्रवृत्ति अर्थात् लोकका व्यवहार तो कहांसे होता ? तस्मात् आपने निःस्वार्थ सब लोकोंको उत्पन्न करके उनके कल्याणके अर्थ यह व्यवहार चलाया, हे स्वामिन् ! सर्व प्राणियोंके ऐसे स्वाभाविक सुहृद जो आप हैं नित आपके विषयमें यह आश्रितोंके ऊपर जो वात्सल्यगुण है अर्थात् आश्रित जनोंके दोषोंको नहीं देखकर उन दोषोंको भी भोग्य मान लेना कुछ आश्चर्य कारक नहीं है ॥१३॥

अव ०- जब ब्रह्मरुद्रादिकभी आपके अंगरूप हैं तब वेदके यथार्थ तात्पर्यको जाननेवाला कौन ऐसा पुरुष है कि - जो आपके ऐश्वर्यको न सहन करे, अब स्वामी यह कहते हैं-

स्वाभाविकाऽनवधिकाऽतिशयेशितृत्वं ना-
रायण ! त्वयि न मृष्यति वैदिकः कः ? ॥
ब्रह्मा शिवः शतमखः परमः स्वराडित्येतेऽपि

यस्य महितार्णवविप्रुषस्ते ॥१४॥

अन्व०- (हे) नारायण ! त्वयि स्वाभाविकाऽनवधिकाऽतिशयेशितृत्वं वैदिकः कः न मृष्यति (तथाहि) ब्रह्मा शिवः शतमखः परमस्वराट् इति एतेऽपि यस्य ते महिमार्णवविप्रुषः (संति) ॥१४॥

भाषा ०- हे नारायण ! अर्थात् हे अखिल जगतके आधार हे अखिल जगत्के अंतर्यामी ! आपके विषय स्वभाव सिद्ध अवधिरहित और अतिशय शून्य जो नियामकत्व है, उसको वेदके यथार्थ तात्पर्यको जाननेवाला कौन है जो न सहन करे ? क्योंकि ब्रह्मा महादेव इन्द्र और इनसे भी बडे मुक्त लोगभी जिन आपकी महिमा रूप समुद्रके अति सूक्ष्म बिन्दु हैं, अतः आपके ऐश्वर्यको वैदिक कौन नहीं सहेगा ॥१४॥

अव ०- श्रीयामुनमुनि इस श्लोकमें भगवान्के सर्वोत्कृष्ट महिमाका वर्णन करते हैं -

कः श्रीः श्रियः परमसत्त्वसमाश्रयः कः
पुण्डरीकनयनः पुरुषोत्तमः कः ॥ कस्याऽयु-
ताऽयुतशतैककलांशकांशे विश्वं विचित्रचि-
दचित्प्रविभागवृत्तम् ॥१५॥

अन्व ०- श्रियः श्रीः कः परमसत्त्वसमाश्रयः कः पुण्डरीक नयनः कः पुरुषोत्तमः कः ॥ कस्यायुतायुतशतैककलांशकांशे विचित्रचिदचित्प्रविभागवृत्तं विश्वम् (अभवत्) ॥१५॥

भाषा ०- हे प्रभो ! महालक्ष्मीकेभी शोभा करनेवाले आपही हो. आपके विना श्रीकाभी श्री दूसरा कौन हो सकता है क्यों ? कि- "भर्त्ता नाम परं नार्या भूषणं भूषणादपि" भर्त्ता जो स्वामी है सो नारीका भूषणसेभी उत्कृष्ट भूषण है तब शोभा करनेवाले भये, तथा शुद्धसत्त्वका आधार भी आपके विना दूसरा कौन है, और दर्शनकरनेवालोंके चित्तको चुरानेवाले परत्वके सूचक ऐसे श्वेतकमलदलसदृश विशाललोचनवालाभी आपके व्यतिरिक्त और कौन है ? तथा क्षर अक्षर अर्थात् बद्ध मुक्त इन दोनोंसे भी उत्तम पुरुषोत्तमशब्दवाच्य भी आपके विना दूसरा कौन है ? तथा कौनके सौ कोटिके सैकडाओंकी एक कलाके एक छोटेसे अंशमें चेतन अचेतन विभागयुक्त यह समग्र जगत् उत्पन्न भया है, तस्मात आपका निरंकुश ऐश्वर्य निरवधिक है कि जिसका पार नहीं. फिर इसको कौन न सहेगा ॥१५॥

अव ०- ब्रह्मरुद्रादिकोंकाभी अनिष्टनिवृत्तिपूर्वक

योगक्षेमकरनेवाला आपके विना और दूसरा कोई नहीं है, यह श्रीयामुनमुनि कहते हैं -

वेदाऽ पहारगुरुंपातकदैत्यपीडाद्यापद्विमोचन-
महिष्ठफलप्रदानैः ।। कोऽन्यः प्रजापशुपती
परिपाति कस्या पादोदकेन स शिवः स्वशि-
रोधृतेन ।।१६।।

अन्व० - वेदापहारगुरुपातकदैत्यपीडाद्यापद्विमोचन महिष्ठफलप्रदानैः अन्यः कः प्रजापशुपती परिपाति स्वशिरोधृतेन कस्य पादोदकेन सः (रुद्रः) शिव (अभूत्) ।।१६।।

भाषा ०- ब्रह्माजीके ऊपर आपद आई ब्रह्माके वेद चुराये गये, रुद्रके ऊपर आपद गुरु जो ब्रह्मा तिनका पातक अर्थात् मस्तक छेदन करनेसे हत्या, ऐसेही वृकासुर आदि दैत्योंसे प्राप्त भई जो पीडा, इत्यादिक आपदाओंसे छुडावना और उत्कृष्ट फलवाले वर देना इत्यादिकार्योंसे दूसरा कौन है जो प्रजापति और पशुपति अर्थात् ब्रह्मा और महादे वजीकाभी परिपालन करता है । तथा अपने मस्तकपर धारणकिये भये किसके

अभीष्टेतिपाठान्तरम् ।

चरणोदकसे वह प्रसिद्ध रुद्रदेव शिवस्वरूप अर्थात् मंगलरूप भये, केवल आपहीके चरणके प्रक्षालन कियेहुए जलसे परमपवित्र होते भयेसो श्रीभागवततृतीयस्कन्धमें लिखा है, कि - "यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्" जिस चरणारविंदके शौचसे निकलेहुए तीर्थरूप गंगाजलसे शिवजीभी पवित्र भये फिर आपके ऐश्वर्यको न सहे ऐसा वैदिक कौन है ? ॥१६॥

अव०- इस प्रपञ्चकी उत्पत्ति पालन संहारादि करनेसे भी आपही सर्वोत्कृष्ट जानेजाते हो यह श्रीयामुनाचार्यस्वामी कहते हैं -

कस्योदरे हरविरिंचिमुखप्रपंचः को रक्षती-
ममजनिष्ट च कस्य नाभेः ॥ क्रान्त्वा निगीर्य
पुनरुद्गिरति त्वदन्यः कः केन चैष परवानिति
शक्यशङ्कः ॥१७॥

अन्व०- हरविरञ्चिमुखप्रपञ्चः कस्योदरे (तिष्ठति) कस्य नाभेः अजनिष्ट च इमं कः रक्षति, त्वदन्यः (इमाम्) क्रान्त्वा निगीर्य पुनः क उद्गिरति, एष केन च परवान् इति शक्यशङ्कः (भवति) (न केनापीत्यर्थः) ॥१७॥

भाषा ०- हे प्रभो ! शिव ब्रह्मा प्रभृति यह समग्र प्रपञ्च (जगत्) कौनके उदरमें है ? और यह किसकी नाभिकमलसे उत्पन्न भया है तथा इसकी कौन रक्षा करता है ? और इसको आपके विना दूसरा कौन पगसे मापके प्रलयसमयमें अपने उदरमें निकलकर सृष्टि समयमें फिर बाहर निकाल कर प्रगट करता है ? तथा यह प्रपंच आपके व्यतिरिक्त किस दूसरेके परतंत्र है ऐसी कोई शंकाभी कर सकता है ? अर्थात् कोई एतादृश शंकाकी संभावनाभी नहीं करसकते हैं ॥१७॥

अव ०- जब श्रीहरि एतादृशगुणसंयुक्त सबके स्वामी हैं तो तामसीलोग क्यों आपका सेवन नहीं करते हैं ऐसी शंकापर कहते हैं -

त्वां शीलरूपचरितैः परमप्रकृष्टसत्त्वेन सा-
त्त्विकतया प्रबलैश्च शास्त्रैः ॥ प्रख्यातदैव-
परमार्थविदां मतैश्च नैवाऽऽसुरप्रकृतयः प्रभ-
वन्ति बोद्धुम् ॥१८॥

अन्व०- शीलरूपचरितैःपरमप्रकृष्टसत्त्वेन सात्त्विकतया प्रबलैः शास्त्रैश्च प्रख्यातदैवपरमार्थविदां मतैश्च आसुरप्रकृतयः त्वां बोद्धुं नैव प्रभवन्ति ॥१८॥

भाषा०- आपके असाधारण रक्षकत्व स्वभावसे लोकोत्तरसौन्दर्ययुक्त दिव्यमंगल विग्रहसे लोकविलक्षण चरित्रोंसे अत्यन्त उत्कृष्ट शुद्धसत्त्वगुणसे सात्त्विकस्वभावसे उपनिषत् पंचरात्रादि प्रबल शास्त्रोंसे तथा परमप्रसिद्ध देवसंबंधी परमार्थ (याथार्थ्य) के जाननेवाले पराशरादिमहर्षियोंके सिद्धांतोंसे भी आसुरस्वभाववाले पुरुष आपको यथावत् जाननेको नहीं ही समर्थ होते हैं। भाव यह कि आसुरप्रकृति होनेसे तमोगुणी लोगोंको यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता है ॥१८॥

अव ०- परमैकांतीलोग आपकी महिमाको छिपावनेपरभी सदा देखते हैं, यह कहते हैं -

उल्लङ्घितत्रिविधसीमसमातिशायि सम्भावनं तव परिव्रढिमस्वभावम् ॥ मायाबलेन भवतापि निगुह्यमानं पश्यन्ति केचिदनिशं त्वदनन्यभावाः ॥१९॥

अन्व०- त्वदनन्यभावाःकेचित् उल्लंघितत्रिविधसीमसमातिशायि सम्भावनं तव परिव्रडिमत्वभावं भवता मायाबलेन निगुह्यमानमपि अनिशं पश्यन्ति ॥१९॥

भाषा ०- आपके विषयमें अनन्यभाववाले अर्थात्

देवतान्तर मंत्रान्तर साधनान्तर छोडकर केवल आपकाही आश्रयलेनेवाले कोई महात्मालोग, उल्लंघन किया है त्रिविध सीमा और सम तथा अधिककी संभावनाको जिसने अर्थात देश काल और वस्तु कृतपरिच्छेद रहित तथा समता और अधिकतासे रहित ऐसा जो आपका प्रभुत्वस्वभाव है उसको आप अपने मायाके बलसे छुपाते हो तो भी वे निरंतर देखते हैं। भाव यह कि - आपके निजदासोंसे आपका लोकोत्तर महिमा छिपा नहीं रहता है ॥१९॥

अव०- लोकमें सब पदार्थ आपके नियाम्य (नियमनके योग्य) अर्थात् आपकी इच्छाके अधीन स्थितिवाले हैं यह कहते हैं -

यदण्डमण्डान्तरगोचरञ्च यद्दशोत्तराण्यावर-
णानि यानि च ॥ गुणाः प्रधानं पुरुषः पर-
म्पदं परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः ॥२०॥

अन्व ०- यत् अण्डं यत् अण्डान्तरगोचरञ्च दशोत्तराणि यानि आवरणानि च गुणाः प्रधानं पुरुषः परम्पदं परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः (सन्ति) ॥२०॥

भाषा ०- जो ब्रह्माण्ड है, तथा जो ब्रह्माण्डके भीतर वस्तुओंका समुदाय है, और ऊपर २ दशगुने ब्रह्माण्डके आवरण

जल तेज वायु आकाश अहंकार महत्तत्त्व प्रकृतिरूप जो सात हैं, तथा सत्त्व रज तम जो तीन गुण हैं, तथा प्रधान जो मूलप्रकृति है, तथा पुरुष जो क्षेत्रज्ञ (जीव) है, तथा परंपद जो नित्यविभूति है और परात्पर नाम सर्वोत्कृष्ट जो ब्रह्म नाम आपका दिव्यमंगलविग्रह है ये सब आपकी विभूति नाम ऐश्वर्य हैं ये सब नियाम्य हैं, आप इनके नियामक हैं, यहांसे वंशस्थ वृत्त है ॥२०॥

अव०- श्रीयामुनाचार्यस्वामी अब यह कहते हैं कि आप अनंत कल्याणगुणोंके समुद्र हो ॥

वशी वदान्यो गुणवानृजुः शुचिर्मृदुर्दयालुर्म-
धुरः स्थिरः समः ॥ कृती कृतज्ञस्त्व-
मसि स्वभावतः समस्तकल्याणगुणाऽमृतो-
दधिः ॥२१॥

अन्व०-वशी वदान्यः गुणवान् ऋजुःशचिः मृदुः दयालुः मधुरः स्थिरः समः कृती कृतज्ञः स्वभावतः समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः (च) त्वम् असि ॥२१॥

भाषा०- सबको वशमें राखनेवाले मांगेभये पदार्थसे अधिक देनेवाले, आश्रितोंके कार्य करनेमें उपयोगी

आश्रितपारतन्त्र्यादिरूप गुणवाले, वहुत सरल, बाहर भीतर परिशुद्ध, मृदु जिनमें कठिनपनेका नाम नहीं, पराये दुःखको नहीं सहनेवाले, अतिमाधुर्युगुणवाले, स्थिरतागुणवाले, आश्रयलेनेमें सबको समान, परमकुशल, करीभई सेवाको करेसे अधिक जाननेवाले, स्वभावसेही संपूर्ण कल्याणरूपगुणोंके अमृत समुद्र आपही हो ऐसा आपके सदृश दूसरा कोई नहीं ॥२१॥

अव०- वेदभी आपके एक २ गुणकीभी अवधिको नही जानते हैं -

उपर्य्युपर्यब्जभुवोऽपि पूरुषान् प्रकल्प्य ते
ये शतमित्यनुक्रमात् ॥ गिरस्त्वदेकैकगुणा-
वधीप्सया सदा स्थिता ॥ नोद्यमतोऽतिशे-
रते ॥२२॥

अन्व ०- (हे विभो !) गिरः त्वदेकैकगुणावधीप्सया अब्जभुवः उपरि उपरिपूरुषान् प्रकल्प्य ते ये शतम् इति अनुक्रमात् सदा स्थितः उद्यमतः न अतिशेरते ॥२२॥

भाषा ०- हे प्रभो ! वेदवाणी, आपके एक एक गुणोंकी अवधि (अन्त) प्राप्तिकी इच्छाकरके ब्रह्मासे भी ऊपर २ पुरुषोंको

कल्पनकरके (ते ये शतं) वे जो सौ अर्थात् संपूर्ण पृथिवीका राजा होवै और उसकी सब पृथिवी धनधान्यादिसुखसंपत्से परिपूर्ण होवै आप स्वयं नानाप्रकारके वर पाया होवै बडा दृढ और लोकोत्तरबलवाला होवे ऐसा होवे तब उसको एक मनुष्यका आनंद प्राप्त होय (ते ये शतं) वे जो सौ आनंद इकट्ठे करे जावें इतना आनंद पूर्णगानविद्यामें कुशल जो मनुष्य गन्धर्व है उसको है इसी प्रकार उसके सौगुना देवोंका आनंद उससे सौगुना देवगन्धर्वोंका इस क्रमसे वह वेदवाणी सदा वर्णन करती भई उद्योगसे नहीं हटती है तो भी सबका आनंद कहते २ परब्रह्मके आनंदके कथनसमयमें "यतो वाचो निवतन्ते अप्राप्य मनसा सह" जिस परब्रह्मके आनंदको नहीं पहुँचकर वेदवाणी निवृत्त हो जाती है ऐसा तो एक आनंद गुण है इसीप्रकार आपके संपूर्ण गुण वाणीमनके अगोचर हैं ॥२२॥

अव ०- इस श्लोकमें श्रीयामुनमुनि भगवदाश्रितोंका भारीमाहात्म्य कहते हैं -

त्वदाश्रितानां जगदुद्भवस्थितिप्रणाशसंसार-
विमोचनादयः ॥ भवन्ति लीला विधयश्च
वैदिकास्त्वदीयगम्भीरमनोऽनुसारिणः ॥२३॥

अन्व-(हे प्रभो) त्वदाश्रितानां जगदुद्भवस्थितिप्रणाशसंसारविमोचनादयः लीला भवन्ति वैदिकविधयश्च त्वदीयगम्भीरमनोऽनुसारिणः (भवन्ति) ॥२३॥

भाषा-हे प्रभो ! आपके आश्रितजनोंको जगत्की उत्पत्ति स्थिती और प्रलय तथा संसारसे छूटना इत्यादिक सब लीला अर्थात् क्रीडारूप होते हैं, ऐसेही वैदिक विधी भी भवदीय भागवतजनोंके गंभीर मनको अनुसरण करनेवाली होती है अर्थात् आपके भक्तोंका स्वाभाविक आचरणभी वेदसे वाहर नहीं होता है ॥२३॥

अव०- श्रीयामुनमुनि इस श्लोकमें भगवान्को नमस्कार करते हैं -

नमो नमो वाङ्मनसाऽतिभूमये नमोनमो
वाङ्मनसैकभूमये ॥ नमोनमोऽनन्तमहा-
विभूतये नमोनमोऽनन्तदयैकसिन्धवे ॥२४॥

अन्व०- वाङ्मनसातिभूमये नमो नमः वाङ्मनसैभूमये नमो नमः अनन्तमहाविभूतये नमो नमः अनन्तदयैकसिन्धवे नमो नमः ॥२४॥

भाषा०-सामान्यसे वाणी और मनके अगोचर जो आप हैं तिनको वारंवार नमस्कार होय, "यतो वाचो निवर्तन्ते"

इत्यादि श्रुतियोंसे तो आप वेदके वाणी मनके भी अगोचर हैं परंतु "पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताऽखिलोदयः (कुंतीजीने ऐसे मधुरपदोंसे भगवान्के सपूर्ण वै वकी स्तुति करी) इस भागवतजीके वचनसे ये मालूम होवे है कि आप अपने सब वैभवसहितभी भक्तजनोंके भले प्रकार वाणीके गोचर होते हैं फिर मनका तो कहना ही क्या है - इसी कारण स्वामी कहते हैं कि-भक्तजनोंके वाणीमनके मुख्य विश्रामस्थानरूप जो आप तिनको अनेकवार नमः। तथा अनंत महाविभूतिवाले आपको अनेकवार नमः हो। तथा अनन्तदयाकेही केवल समुद्ररूप जो आप तिनको अनेकवार नमस्कार होय ॥२४॥

अव०- इस श्लोकमें स्वामी कहते हैं कि, हम कर्मयोग ज्ञानयोग तथा भक्तियोगमें असमर्थ हैं इसीकारण केवल आपके चरणकी शरण लेते हैं-

न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमां-
स्त्वच्चरणारविन्दे ॥ अकिञ्चनोऽनन्यगतिः
शरण्य त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥२५॥

अन्व०- हे शरण्य ! (अहम्) धर्मनिष्ठः न अस्मि आत्मवेदी च न, त्वच्चरणारविन्दे भक्तिमान् न (अत एव)

अकिञ्चनः अनन्यगतिः (च अस्मि) तव पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥२५॥

भाषा ०- हे शरणजानेके योग्य हे भगवान्! मैं धर्ममें निष्ठवाला भी नहीं हूँ, आत्मज्ञानवाला भी नहीं हूँ, तथा आपके चरणारविन्दमें भक्तिवालाभी नहीं हूं, इसीसे मैं अकिञ्चन हूं, अर्थात् आपकी प्राप्तिके इन उपायोंसे रहित हूं और अनन्यगति हूं, अर्थात् आपके विना दूसरा कोई मेरा रक्षक नहीं है, तथा मेरेको कोई दूसरा प्राप्य (प्राप्तिकी इच्छाका विषय) भी नहीं है। इसीसे आपके चरणारविन्दकी शरणागति करता हूं आपके चरणोंकोही उपाय मानकर आश्रय लेता हूँ, 'शरणं गृहरक्षित्रोः'' अथवा आपके चरणोंमें डेरा देता हूं, अथवा आपके चरणोंको रक्षकत्वेन स्वीकार करता हूं। इहांसे २८ श्लोक तक उपजाति छन्द है ॥२५॥

अब ०- मैं वडा पापकर्मवाला उपायांतरशून्य आपके आगे रोता इस श्लोकमें यह कहते हैं -

न निन्दितं कर्म तदस्ति लोके, सहस्रशो
यन्न मया व्यधायि ॥ सोहं विपाकावसरे
मुकुंद क्रन्दामि सम्प्रत्यगतिस्तवाग्रे ॥२६॥

अन्व ०- हे मुकुन्द ! लोके निन्दितं कर्म तत् न अस्ति यत् मया सहस्रशः न व्यधायि सः अहं संप्रति विपाकाऽवसरे अगतिः तव अग्रे क्रन्दामि ॥२६॥

भाषा ०- हे मुकुन्द ! हे मुक्तिदेनेवाले ! लोकमें ऐसा निन्दित कर्म वह कोई नहींहै कि, जो मैंने सहस्त्रों (हजारों) वार न किया होवे, ऐसा पापी मैं अव उस कर्मके परिपाक समयमें उपायान्तरशून्य होनेसे आपके आगे कंठ खोलकर चिल्लाता हूं ॥२६॥

अव ०- बहुतकालसे भटकते २ अब ठिकाने आया हूँ, आपको भी दयाकरने योग्य ऐसा दीन दूसरा नहीं मिला होगा तस्मात् अब अवश्य रक्षा कीजिये यह कहते हैं -

निमज्जतोऽनन्तभवाऽर्णवान्तश्चिराय मे कूल-
मिवासि लब्धं ॥ त्वयाऽपि लब्धं भगवन्नि-
दानीमनुत्तमं पात्रमिदं दयायाः ॥२७॥

अन्व ०- हे भगवन् अनन्तभवार्णवान्तःनि-मज्जतः मे चिराय त्वं कूलम् इव लब्धः असि त्वयापि इदानीं दयायाः इदम् अनुत्तमं पात्रं लब्धम् ॥२७॥

भाषा-हे भगवन् ! हे ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तेजोरूप षड्गुणसम्पन्न ! इस अपार संसारसमुद्रके भीतर

डूबते हुए ऐसे मेरेको बहुतकालमें आप तीरसदृश मिले हो, और आपको भी इस समय दया करनेलायक ऐसा उत्तमपात्र मिला हैं कि जैसा कभी न मिला होगा, अर्थात दयाका पात्र दीन होता है सो मेरे सदृश जगत्में दीन कौन दूसरा होगा इसीसे अब इसका पालन कीजिये ॥२७॥

अव ०- आपके भये पश्चात भी दुःखानुभव करना पडता है, ऐसा प्रवाद आपको अनुचित है यह कहते हैं-

> **अभूतपूर्वं मम भावि किं वा सर्वं सहे मे**
> **सहजं हि दुःखम् ॥ किन्तु त्वदग्रे शरणा-**
> **गतानांपराभवो नाथ न तेऽनुरूपः ॥२८॥**

अन्व०- हे नाथ ! मम अभूतपूर्वं किंवा भावि सर्वम् (अहम) सहे (यतः) दुःखं मे सहजं हि, किन्तु शरणागतानां त्वदग्रे पराभवः ते अनुरूपः न (अस्ति) ॥२८॥

भाषा०- हे नाथ ! हे स्वामिन् ! मेरेको जो कभी नहीं भया हो ऐसा अथवा होनेवाला सब प्रकारका दुःख सहताही हूं, क्योंकि ? दुःख तो मेरे (जीवोंके) स्वाभाविकही है। परंतु आपके शरणागतोंका आपके सामने पराभव (तिरस्कार दुर्दशा) होना आपके अनुरूप नहीं है, तस्मात् मेरेमें गुणलेश न

होनेपर भी आप अपने बडप्पनको देखकर मेरा पालन करो ॥२८॥

अव ०- श्रीयामुनमुनि प्रभुसे कहते हैं कि, आप मेरेको त्याग भी करो तोभी मैं आपके चरणारविन्द नहीं छोडूंगा-

निरासकस्याऽपि न तावदुत्सहे महेश
हातुं तव पादपंकजम् ॥ रुषा निरस्तोऽपि
शिशुः स्तनन्धयो न जातु मातुश्चरणौ
जिहासति ॥२९॥

अन्व ०- हे महेश ! (अहम्) तावत् निरासकस्याऽपि तव पादपंकजं हातुं न उत्सहे, (तथाहि) स्तनन्धयः शिशुः रुषा निरस्तोऽपि जातु मातुः चरणौ न जिहासति ॥२९॥

भाषा ०- हे महेश ! हे बडे ईश्वर ! अर्थात् ईशोंकेभी ईश ! आप जो मेरा त्यागभी करो तो भी मैं आपके चरणारविन्द छोडनेका कभी उत्साह नहीं करताहूं, जैसे कि, स्तनपानमात्र जिसका आधार है ऐसा जो छोटावालक है उसको माता रोषकरके त्यागभी करै तौभी वह बालक कदाचित् भी माताके चरणोंके छोडनेकी इच्छा नहीं करता है ॥२९॥ यहांसे फिर वंशस्थवृत्त है ॥

अव ०- आपके भक्त आपके पादारविन्दसे अन्यपदार्थकी इच्छा नहीं करते हैं, यह कहते हैं -

तवाऽमृतस्यन्दिनि पादपंकजे निवेशितात्मा
कथमन्यदिच्छति ॥ स्थितेऽरविन्दे मकरन्द-
निर्भरे मधुव्रतो नेक्षुरंकं हि वीक्षते ॥३०॥

अन्व०- (हे प्रभो !) अमृतस्यन्दिनि तव पादपंकजे निवेशितात्मा अन्यत् कथम् इच्छति ? (तथाहि) मधुव्रतः मकरन्दनिर्भरे अरविन्दे स्थिते (सति) इक्षुरंकं न वीक्षते हि ॥३०॥

भाषा ०- मोक्षके प्रस्त्रवण करनेवाले अर्थात् जिसमेंसे मोक्ष नामक पुरुषार्थके झरने चल रहे हैं ऐसे आपके चरणकमलमें जिसका चित्त लगगया है वह अन्य सांसारिकपदार्थकी किसप्रकार इच्छाकर सकता है जैसे कि-मकरन्दपरिपूर्ण अरविन्दके होनेपर भ्रमर इक्षुरक अर्थात् तुच्छ इक्षुगन्धा नामक तालमखानेके पुष्पको कभी देखताभी है ? इसी तरह आपमें अनुरक्त जन ऊंचे संसारके विषयोंको नहीं देखते हैं ॥३०॥

अव ०-श्रीयामुनमुनि भगवानको हाथ जोडनेका माहात्म्य कहते हैं -

त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदाऽपि केनचिद्यथा तथा

वाऽपिसकृत्कृतोऽञ्जलिः ॥ तदैव मुष्णात्यशु-

भान्यशेषतः शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते ॥३१॥

अन्व ०- (हे हरे !) त्वदङ्घ्रिम उद्दिश्य कदा अपि केनचित् यथा तथा वाऽपि सकृत् अञ्जलिःकृतः तदैव अशेषतः अशुभानि मुष्णाति शुभानि पुष्णाति जातु न हीयते ॥३१॥

भाषा ०- हे हरे ! आपके चरणारविन्दका उद्देश करके अर्थात् चरणकमलके निमित्त कभी भी (कालका नियम नहीं) कोई भी (जातिका नियम नहीं) जैसे तैसे भी (कुछ विधि नहीं) एकबारभी दोनों हाथ जोडकर जो अंजलि करता है, वह हाथ जोडनाही इतना प्रवल है कि-उसी समय उस पुरुषके पापोंको हर लेता है, और अनेक पुण्यको उत्पन्न करके पुष्ट करता है, और फिर कभी हीन नहीं होता यह एक कृतज्ञताकी पराकाष्ठा जनाई ॥३१॥

अव ०- आपके चरणोंमें किंचित्भी अनुराग होवे तो वह संसारके तापोंको निवृत्तकर परमसुखको देता है, यह कहते हैं -

उदीर्णसंसारदवाऽऽशुशुक्षणिं क्षणेन निर्वाप्य

परां च निर्वृतिम् ॥ प्रयच्छति त्वच्चरणारुणा-

म्बुजद्वयानुरागाऽमृतसिंधुशीकरः ॥३२॥

अन्व ०- त्वच्चरणारुणाम्बुजद्वयाऽनुरागाऽमृतासिन्धु शीकरः उदीर्णसंसारदवाशुशुक्षणिं क्षणेन निर्वाप्य परां निर्वृतिं च प्रयच्छति ॥३२॥

भाषा - आपके दोनों चरणरूप रक्तकमलके अनुरागरूप अमृत जो समुद्र है उसका जो छोटा सा जलकण है वह भी बढे हुए संसाररूप दवाग्निको क्षणमात्रमें शान्त करके परमानन्दको प्राप्त करता है, फिर जो साक्षात् अनुरागससमुद्रमें मग्न होजावे उसके सुखका क्या पार है ॥३२॥

अव ०- हमारा धन जो आपका चरणारविन्द है तिसके साक्षात् कब देखैंगे, यह कहते हैं -

विलासविक्रान्तपराऽवरालयं नमस्यदार्त्ति-
क्षपणे कृतक्षणम् ॥ धनं मदीयं तव पादपंक-
जं कदा नु साक्षात्करवाणि चक्षुषा ॥३३॥

अन्व०- विलासविक्रान्तपरावरालयं नमस्यदार्तिक्षपणे कृतक्षणं मदीयं धनं तव पादपंकजं (अहम्) कदा नु चक्षुषा साक्षात् करवाणि ॥३३॥

भाषा - लिलाई करके ब्रह्मादिकनके और मनुष्यादिकनके

लोकोंका क्रमण करनेवाला (मापनेवाला) नमन करनेवालोंकी आर्त्ति (दुःख) दूर करनेमें हर्ष करनेवाला हमारा परमधन ऐसा जो आपका चरणकमल है उसको कौन कालमें अपने नेत्रसे प्रत्यक्ष करुंगा ॥३३॥

अव ०- आपका चरणारविंद कब हमारे मस्तकको भूषित करेगा यह कहते हैं -

कदा पुनः शंखरथाङ्गकल्पकध्वजारविन्दां-
कुशवज्रलाञ्छनम् ॥ त्रिविक्रम त्वच्चरणा-
म्बुजद्वयं मदीयमूर्द्धानमलङ्करिष्यति ॥३४॥

अन्व ०- हे त्रिविक्रम ! शंखरथाङ्गकल्पकध्वजारविन्दाङ्कुशवज्रलाञ्छनं त्वच्चरणाम्बुजद्वयं कदा पुनः मदीयमूर्द्धानम् अलंकरिष्यति ॥३४॥

भाषा०- हे त्रिविक्रम ! (तीन पगमें समस्त जगत्को मापनेवाला !) शंख चक्र कल्पवृक्ष ध्वजा कमल अंकुश वज्र इत्यादिक चिह्नवाले आपके दोनों चरणारविंद कौन कालमें फिर मेरे मस्तकको अलंकृत करेंगे, अर्थात् कब आप नित्य विभूतिमें प्राप्त करोगे ॥३४॥

अव०- यहांसे उगणपंचाशश्लोकपर्यन्त पंद्रह श्लोकोंसे

भगवान्के स्वरूप रूपादिका वर्णन करतेहैं, यह पंद्रह श्लोकका कुलक हैं(जहां एक श्लोकका एकहीमें अन्वय होवै उसको 'मुक्तक' कहते हैं, दोका एकमें अन्वय होवे उसको 'युग्मक' तीनका एकमें अन्वय होवै उसको 'विशेषक' कहते हैं, चारसे लेकर आगे जितनेका एक अन्वय हो उसको 'कुलक' कहते हैं)

विराजमानोज्ज्वलपीतवाससं स्मिताऽतसी-
सूनसमाऽमलच्छविम् ॥ निमग्ननाभिं तनुम-
ध्यमुन्नतंविशालवक्षःस्थलशोभिलक्षणम् ॥३५॥

अन्व०- विराजमानोज्ज्वलपीतवाससं स्मिता-तसीसूनसमाऽमलच्छविं निमग्ननाभिंतनुमध्यम्उन्नतं-विशालवक्षस्स्थलशोभिलक्षणम् (भवन्तं कदा प्रहर्षयिष्यामीति पञ्चदशेनान्वयः) ॥३५॥

भाषा ०- विराजमान है उज्ज्वल पीतांबर जिनके, प्रफुल्लित अतसीके पुष्पसदृश निर्मल श्यामलकांतिवाले गंभीर नाभिवाले सूक्ष्म है मध्यभाग (कटि) जिनका और विशालवक्षःस्थलमें शोभित है श्रीवत्सचिह्न जिनके ऐसा आपका अनुचर होकर कब आपको हर्षित करूंगा ॥३५॥

अव०-इस श्लोकमें श्रीयामुनाचार्यस्वामी भुजाओंका

वर्णन करते हैं -

चकासतं ज्याकिणकर्कशैः शुभैश्चतुर्भिराजा-
नुविलम्बिभिर्भुजैः ॥ प्रियावतंसोत्पलकर्ण-
भूषणश्लथाऽलकाबंधविमर्द्दशंसिभिः ॥३६॥

अन्व०- प्रियावंतसोत्पलकर्णभूषणश्लथाऽलकाबन्ध विमर्द्दशंसिभिः ज्याकिणकर्कशैः आजानुविलम्बिभिः शुभैः चतुर्भिः भुजैः चकासतम् ॥३६॥

भाषा ०- कैसे वो भगवान् हैं जिसको हम प्रहर्षित करनेका मनोरथ करते हैं, कि - अपनी प्रिया जो श्रीजी हैं उनका अवतस नाम शिरका भूषण उत्पल नाम कमलदलरूप कानोंका भूषण तथा और जो दूसरे कर्णभूषण तथा शिथिल भये जो अलकोंके बन्ध इनका जो विमर्द होनेसे चिह्न पडे हैं उन चिन्होंसे उस विमर्दको सूचन करनेवाले तथा शार्ङ्गधनुषकी प्रत्यंचाके चिह्नोंसे कठिन भी हैं तथा जानु (घोटूं) पर्यंत लम्वे ऐसे शुभ चार भुजाओंसे प्रकाशमान हो रहे हैं ॥३६॥

अव ०- श्रीयामुनाचार्य स्वामी दो श्लोकोंमें कंठसे ऊपरकी शोभाका अनुभव करते हैं -

उदग्रपीनांसविलम्बिकुण्डलाऽलका वलीब-

न्धुरकम्बुकन्धरम्॥मुखश्रियान्यक्कृतपूर्णनि-
र्मलाऽमृतांशुबिम्बाम्बुरुहोज्ज्वलश्रियम् ॥३७॥
प्रबुद्धमुग्धाऽम्बुजचारुलोचनं सविभ्रमभ्रूलत-
मुज्ज्वलाऽधरम् ॥ शुचिस्मितं कोमलगण्ड-
मुन्नसं लालाटपर्यन्तविलम्बितालकम् ॥३८॥

अन्व०- उदग्रपीनांसविलंबिकुण्डलालजावलीव-न्धुरकम्बुकन्धरं मुखश्रियान्यक्कृतपूर्णनिर्मलामृतां-शुविंबाम्बुरुहोज्ज्वलश्रियम् ॥३७॥ प्रबुद्धमुग्धाम्बुज-चारुलोचनं सविभ्रमभ्रूलतम् उज्ज्वलाऽधरम् शुचिस्मितं कोमलगण्डम् उन्नसं ललाटपर्यन्तविलम्बितालकम् ॥३८॥

भाषा ०- फिर कैसे हैं भगवान् कि, उन्नत और पुष्ट जो दोनों कंधा तिनके ऊपर लटकते हुए जो दोनों कुंडल और अलकावली उनसे स्वभावसे उन्नत भी किंचित् नत (नीची) होरही है शंखसदृश ग्रीवा जिनकी ऐसे, और अपने मुखकी शोभा करके नीची करी है परिपूर्ण निर्मल चन्द्रबिम्ब और कमल इन दोनों की उज्ज्वल शोभा जिनसे ऐसे आप हैं ॥३७॥ फिर कैसे हैं, कि-तत्कालमें खिलनेवाले सुन्दर कमलसदृश मनोहर नेत्र हैं जिनके, तथा विलास सहित है भ्रकुटीरूप लता

जिनकी, उज्ज्वलनास प्रकाशमान है अधर ओष्ठ जिनका, शुचिनाम विकार रहित मन्दहास जिनका, मृदु हैं दोनों कपोल जिनके, तिल पुष्प सदृश ऊंची है नासिका जिनकी, तथा दोनों तरफ ललाट प्रांतमें लटकनेवाले हैं अलक केश जिनके ऐसे प्रभु हैं ॥३८॥

अव०- श्रीयामुनमुनि समग्रभूषण आयुधोंसहित भगवान् की शोभाका अनुभव करते हैं -

स्फुरत्किरीटाङ्गदहारकण्ठिकामणीन्द्रकाञ्चीगु
णनूपुरादिभिः ॥ रथाङ्गशंखासिगदाधनुर्व-
रैर्लसत्तुलस्या वनमलयोज्ज्वलम् ॥३९॥

अन्व०- स्फुरत्किरीटांगदहारकण्ठिकामणीन्द्रकाञ्ची-गुणनूपुराभिः रथांगशंखासिगदाधनुर्व रैः लसत्तुलस्या वनमालया उज्ज्वलम् ॥३९॥

भाषा०- फिर कैसे हैं, कि-प्रकाशमान जो किरीट अंगद (बाजूबन्द) हार (मोतीमाला) कंठी जडाऊ रत्नोंकी तथा वक्षस्थलमें कौस्तुभमणि, कटिमें कांची और कटिसूत्र, चरणारविन्दोमें नूपुर पैजनिया इत्यादिक दिव्यभूषणोंसे तथा चक्र शंख खड्ग गदा धनुष इत्यादिक दिव्य आयुधोंसे तथा

बीच २ में तुलसी जिसमें शोभित होरहीहैं ऐसी वमनमाला अर्थात् "आपादलम्बिनी माला वनमाला प्रकीर्त्तिता" कंठसे चरणोंतक लंबी जो पुष्प-तुलसीकी माला है उसको वनमाला कहते हैं उस वनमालासेभी अत्यंत शोभित होरहेहैं ॥३९॥

अव ०- अव श्रीयामुनाचार्य स्वामी चार श्लोकोंमे यह वर्णन करते हैं, कि- आप लक्ष्मीके सहित शेषजीपर विराजे हैं, तहां प्रथम दो श्लोकोंमें श्रीलक्ष्मीजीका वर्णन, फिर दो श्लोकोंमें शेषजीका वर्णन है -

चकर्थ यस्या भवनं भुजान्तरं तव प्रियं धाम
यदीयजन्मभूः ॥ जगत्समग्रं यदपांगसंश्रयं
यदर्थमम्भोधिरमन्थ्यबन्धि च ॥४०॥
स्ववैश्वरूप्येण सदाऽनुभूतयाऽप्यपूर्ववद्विस्मय
मादधानया ॥ गुणेन रूपेण विलासचेष्टितैः
सदा तवैवाचितया तव श्रिया ॥४१॥

अन्व ०- (स्वकीयं) भुजान्तरं यस्या भवनं चकर्थ यदीयजन्मभूःतव प्रियं धाम समग्रं जगत् यदपाङ्गसंश्रयं मदर्थं (त्वया) अम्भोधिः अमन्थि अबंधि च ॥४०॥ स्ववैश्वरूप्येणसदाऽनुभूतयाऽपिअपूर्ववत्

विस्मयम्आदधानया गुणेन रूपेण विलासचेष्टितैःसदा तवैव उचितया तव श्रिया(तया सह आसीनम् इत्युत्तरेणान्वयः) ॥४१॥

भाषा ०-अपने दोनो भुजाओंका मध्य अर्थात् वक्षःस्थलको आपने जिनका निवासभवन बनाया, और जिनकी जन्मभूमि(क्षीरसमुद्र) आपका प्रियधाम (निवासस्थान) भया, तथा संपूर्ण जगत् जिनके कटाक्षकेआश्रय है, तथा जिनके अर्थ आपने समुद्रको मथा और बांधा भी ॥४०॥ अपने विश्वरूपपनेसे अथवा समस्त रूपोंसे सर्वकालमें जिसका अनुभव करनेपरभी नवीनसरीखे विस्मय (आश्चर्य) को प्राप्तकरनेवाली तथा दया शांति आदिगुणोंसे और दिव्य सौन्दर्यवाले रूपसे औरनानाप्रकारके विलास तथा चेष्टाओंसे सदा आपही के योग्य ऐसी जो आपकीअनपायिनी लक्ष्मी हैं ॥४१॥

अव ०- इन दो श्लोकोंमे शेषजीका वर्णन करते हैं -

तया सहासीनमनन्तभोगिनि प्रकृष्टविज्ञान-
बलैकधामनि ॥ फणामणिव्रातमयूखमण्डल-
प्रकाशमानोदरदिव्यधामनि ॥४२॥ निवास-
शय्यासनपादुकांशुकोपधानवर्षातपवारणादि-
भिः ॥ शरीरभेदैस्तव शेषतां गतैर्यथोचितं

शेष इतीरिते जनैः ॥४३॥

अन्व ०- तव शेषतां गतैः निवासशय्यासनपादुकांशुकोपधानवर्षातपवारणादिभिः शरीरभेदैः यथोचितं जनैः शेष इति ईरिते प्रकृष्टविज्ञानबलैकधामनि फणामणिव्रातमयूखमण्डलप्रकाशमानोदरदिव्यधामनिअनन्तभोगिनि तया सह आसीनम् ॥४२॥४३॥

भाषा ०- यथायोग्य समय २ पर आपके दासभावको प्राप्तहोनेवाले निवास (सदनादि) शय्या आसन पादुका अंशुक (पीताम्बरादि) उपधान (गेन्दुक-तकिया) छत्र इत्यादि नानाप्रकारके शरीरोंको धारण करके सेवामें सदा रहनेसे जिनको जन शेष ऐसा कहते हैं ऐसे, ज्ञान और बल इन दो गुणोंके अद्वितीय धाम (अर्थात् संकर्षणमूर्त्तिमें ये दो गुणही उपयोग देते हैं तासे दो गुणके धाम कहे, नहीं तो येभी षड्गुणपरिपूर्ण हैं) तथा सहस्त्र फणोंमें जो मणिगणोंका समूह तिनके किरणोंके मण्डलसे प्रकाशमान है उदररूप दिव्य धाम जिनका ऐसे जो श्रीअनंत भगवान् शेषजी हैं तिनके ऊपर पूर्वोक्त उन श्रीलक्ष्मीजीके साथ विराजमान हैं ॥४२॥४३॥

अव ०- इस श्लोकमें गरुडजीसे जैसे प्रभु सेवित होते हैं सो कहते हैं-

दासः सखा वाहनमासनं ध्वजो यस्ते विता-
नं व्यजनं त्रयीमयः ॥ उपस्थितं तेन पुरो
गरुत्मता त्वदङ्घ्रिसम्मर्द्दकिणाङ्कशोभिना ॥४४॥

अन्व०- यः त्रयीमयः (गरुडः) दासः सखा वाहनम् आसनं ध्वजः वितानं व्यजनं (भवति) त्वदङ्घ्रिसम्मर्द्दकिणांकशोभिना तेन गरुत्मना पुर उपस्थितम् ॥४४॥

भाषा ०- उडते समय जिनके पंखोंमें ऋक् यजुः साम इनतीनों वेदोंकी ध्वनि होवै है इसीसे वेदत्रयीमय जो गरुडजी आपके दास, सखा, वाहन, सिंहासन, ध्वजा चांदनी बीजना इत्यादि रूप धारण करके समय २ पर सेवा करते हैं, और सवारीके समयमें जो आपके चरणारविन्दका संघर्षण होता है तिससे भया जो चिह्न तिसकी जिनके अंगमें शोभा होरही है, ऐसे गरुडजी हाथ जोडकर आपके आगे उपस्थित होरहे हैं ॥४४॥

अव०- इस श्लोकमें श्रीविष्वक्सेनजीसे प्रभु जैसे सेवित होते हैं सो कहते हैं -

त्वदीयभुक्तोज्झितशेषभोजिना त्वया निसृ-
ष्टात्मभरेण यद्यथा ॥ प्रियेण सेनापतिना

निवेदितं तथाऽनुजानन्तमुदारवीक्षणैः ॥४५॥

अन्व ०-त्वयोपभुक्तोज्झितशषेभोजिना त्वया निसृष्टात्मभरेण प्रियेण सेनापतिना यत् यथा निवेदितम् उदारवीक्षणैः (तत् तथा अनुजानन्तम्) ॥४५॥

भाषा ०- सदा आपकी प्रसादीमात्रके भागवेवारे, और जिनके ऊपर छोडा है संपूर्णभार आपने ऐसे प्रिय सेनापति और मुख्य मंत्री भी ऐसे विष्वक्सेनजी जो बात जैसे निवेदन करते हैं, उसको उसी प्रकार अपने उदारकटाक्षोंसे अनुज्ञा (आज्ञा) देनेवारे ऐसे आप हैं ॥ ४५॥

अव ०-इस श्लोकमें अपने मंत्रियोंसे जैसे संवित होते हैं सो कहते हैं-

हताऽखिलक्लेशमलैस्स्वभावतस्त्वदानुकूल्यैक
रसैस्तवोचितैः ॥ गृहीततत्त्तत्परिचारसाधनै-
र्निषेव्यमाणं सचिवैर्यथोचितम् ॥४६॥

अन्व ०- स्वभावतः हताऽखिलक्लेशमलैः त्वदानुकूल्यैकरसैः तव उचितैः गृहीततत्त्तात्पारिचारसाधनैः सचिवैः यथोचितं निषेव्यमाणम् ॥४६॥

भाषा ०-स्वभावहीसे नष्ट भये है संपूर्ण क्लेशरूप मल जिनके अर्थात् स्वभावहीसे निर्मल और सदा आपकी

अनुकूलताही एक मुख्य रस है जिनको ऐसे, तथा आपके उचित और सेवाके लिये ग्रहणकिये छत्र चामर व्यजनादिरूप वे वे परिचार (सेवा) के साधन जिन्होंने ऐसे आपके मंत्रियोंसे आप सदा सेवित हैं ॥४६॥

अव०- इस श्लोकमें नानाप्रकारकी लीलाओंसे लक्ष्मीजीको आप आनंद देते हैं यह कहते हैं -

अपूर्वनानारसभावनिर्भरप्रबुद्धया मुग्धविद-
ग्धलीलया ॥ क्षणाऽणुवत्क्षिप्तपरादिकालया
प्रहर्षयन्तं महिषीं महाभुजम् ॥४७॥

अन्व०-अपूर्वनानारसभावनिर्भरप्रबुद्धया क्षणाऽणुवत् क्षिप्तपरादिकालया मुग्धविदग्धलीलया महिषीं प्रहर्षयन्तं महाभुजम् ॥४७॥

भाषा०- नित्य नवीन जो नानाप्रकारके श्रृंगारादि रस विलासादिभाव तिनकी परिपूर्णतासे विकासको प्राप्त होनेवाली और क्षणमात्रकालके अणुभागके सदृश क्षिप्त नाम व्यतीत भये हैं ब्रह्मादिकोंकी आयुष्यके काल जिसमें ऐसी सुन्दर चातुर्यकी लीला करके श्रीलक्ष्मीजी जो आपकी पटरानी हैं उनको हर्ष

१ त्वयोपभुक्तेति पाठान्तरम्। २ यदा। २ तदा इति च पा०।

करानेवाले तथा बडी भुजाओंवाले ऐसे आपहैं ॥४७॥

अव०-फिरभी श्रीयामुनमुनि प्रभुके गुणोंका अनुभव करते हैं-

अचिन्त्य दिव्याद्भुतनित्ययौवनस्वभावलाव-
ण्यमयाऽमृतोदधिम् ॥ श्रियः श्रियं भक्तजनै
कजीवितं समर्थमापत्सखमर्थिकल्पकम् ॥४८॥

अन्व०- अचिन्त्यदिव्याऽद्भुतनित्ययौवनस्वभाव-लाण्यमयाऽमृतोदधिं श्रियः श्रियं भक्तजनैकजीवितं समर्थम् आपत्सखम् अर्थिकल्पकम् ॥४८॥

भाषा ०- चिंतनेमें नहीं आवे ऐसा अप्राकृत अति आश्चर्य करनेवाला नित्य यौवन है जिनका अर्थात् सदा षोडशवर्षके सदृश रहनेवाले, तथा स्वभावसेही लावण्यमय अमृतके समुद्र हैं सर्वांगसौन्दर्य ऐसा है, कि-सदा दर्शन करनेपरभी नेत्र तृप्त नहीं होते हैं, तथा श्रीकीभी श्री आप हैं अर्थात् लक्ष्मीजीके भी शोभा करनेवाले हैं, तथा भक्तजनोंके तो मुख्य जीवन हैं, फिर कैसे हैं, कि- समर्थ हैं और आपद्कालके सखा हैं तथा याचक जनोंके कल्पवृक्ष ऐसे आप हैं ॥४८॥

अव ०- यहांतक चौदह श्लोकोंमें भगवान्के विशेषण

कहे अब इस पंद्रहवें श्लोकमें विशेष्य कहकर क्रियापदके साथ अन्वय पूर्ण करते हुए अपनी अभिलाषाको प्रकट करते हैं -

भवन्तमेवाऽनुचरन्निन्तरं प्रशान्तनिश्शेष-
मनोरथान्तरः ॥ कदाऽहमैकान्तिकनित्यकिं-
करः प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम् ॥४९॥

अन्व ०-(एवंभूतं) भवन्तम् एव निरन्तरम् अनुचरन् (सन्) प्रशान्तनिश्शेषमनोरथान्तरः ऐकांतिकनित्यकिंकरः सनाथजीवितं (यथा तथा) कदा अहं (भवन्तम्) प्रहर्षयिष्यामि ॥४९॥

भाषा ०- इस प्रकार जो आप हो तिन आपकाही सदा अनुचर होकर, अत्यन्त शांत भये हैं अन्य मनोरथ जिसके ऐसा परम एकांती नित्य आपका किंकर होकर अपने जीवितको सनाथ कर (अर्थात जबतक स्वामिनी सहित आपका एकान्त नित्य कैंकर्य नहीं प्राप्त भया तबतक जीवन व्यर्थ होनेसे अनाथ है जीवितका फल आपके चरणयुगलकी परिचर्याही है) कब मैं आपको प्रहर्षित करूंगा ॥४९॥

अव ०- ब्रह्म रुद्रादिकोंको भी ध्यान करनेमें दुर्लभ जो आपका एकान्त भृत्यभाव तिसकी मैं मूढबुद्धिवाला प्रार्थना

करता हूं ऐसे मेरेको धिक्कार है यह श्रीयामुनाचार्य स्वामी कहतेहैं -

धिगशुचिमविनीतं निर्दयं मामलज्जं परमपु-
रुष ! योहं योगिवर्याग्रगण्यैः ॥ विधिशिव-
सनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरं तव परिजनभावं
कामये कामवृत्तः ॥५०॥

अन्व०-यः अहं योगिवर्याऽग्रगण्यैः विधिशिवसनकाद्यैः ध्यातुम् अत्यन्तदूरं तव परिजनभावं कामवृत्तः (सन्) कामये (तम्) अशुचिम् अविनीतं निर्दयम् अलज्जं मां धिक् (अस्ति) ॥५०॥

भाषा ०- जो मैं बडे २ योगिवर्योंमेंअग्रगण्य ऐसे ब्रह्मा महादेव और सनकादिकोंको ध्यान करनेकोभी अतिदूर अर्थात् ध्यानमेंभी न आसके ऐसे आपके परिजनभाव (सेवकपने) को काम वृत्त (कामं यथेष्टं वृत्तं चरित्रं यस्य यथेच्छाचारी) होकर चाहता हूं, ऐसे अपवित्र विनयहीन निर्दय निर्ल्लज मेरेको धिक्कार है। वृत्त मालिनी है ॥५०॥

अव ०- श्रीयामुनमुनि यह कहतेहैं कि सर्वप्रकार अशक्त ऐसे मेरेको आपही कृपाकर अपने अधीन करो -

अपराधसहस्त्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवो-
दरे ॥ अगतिं शरणागतं हरे ! कृपया केवल-
मात्मसात्कुरु ॥५१॥

अन्व ०- हे हरे ! अपराधसहस्त्रभाजनं भीमभवार्णवोदरे पतितम् अगतिं शरणागतं (माम्) केवलं दयया आत्मसात्कुरु ॥५१॥

भाषा ०- हे हरे ! हे आश्रितजनोंके दुःख हरनेवाले ! हजारों अपराधोंका पात्र और भयंकर संसारसमुद्रमें पडा भया, अन्य सभी उपायोंसे रहित, केवल आपके शरणागत ऐसा जो मैं हूं सो मेरेको निःस्वार्थ दया करके आप अपने स्वाधीन करो यह प्रार्थना है। वैतालीय वृत्त है ॥५१॥

अव ०- श्रीयामुनमुनीन्द्र इस श्लोकमें दुर्दिनका रूपक दिखायकर अपने ऊपर भगवत्कटाक्षकी प्रार्थना करते हैं -

अविवेकघनान्धदिङ्मुखे बहुधा सन्ततदुःख-
वर्षिणि ॥ भगवन् ! भवदुर्दिने पथस्स्ख
लितं मामवलोकयाच्युत ! ॥५२॥

अन्व ०- हे भगवन् ! हे अच्युत ! अविवेकघनान्ध-दिङ्मुखे बहुधा सन्ततदुःखवर्षिणि भवदुर्दिने पथः स्खलित

माम् अवलोकय ॥५२॥

भाषा ०- हे षड्गुणसम्पन्न ! हे भक्तोंके कार्यसे नहीं चूकनेवाले अविवेकरूप मेघसे अंधकारव्याप्त होरहीहैं सब दिशायें जिसमें अनेक प्रकारसे निरंतर दुःखोंकी वर्षा होरहीहै जिसमें ऐसा जो संसाररूप दुर्दिन है (मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्- मेघसे ढके दिवसको दुर्दिन कहते हैं) तिसमें समीचीन मार्गसे खिंसलाभया जो मैं तिस मेरेको आप अवलोकन करो ॥५२॥

अव ०- जो आप मेरी रक्षा नहीं करोगे तो मैं सत्य कहता हूं, कि-आपको मेरे सदृश रक्षा करनेलायक दुर्लभ होजायगा, यह कहते हैं :-

न मृषा परमार्थमेव मे शृणु विज्ञापनमेक-
मग्रतः ॥ यदि मे न दयिष्यसे ततो दयनी-
यस्तव नाथ ! दुर्लभः ॥५३॥

अन्व ०- हे नाथ ! मृषा न परमार्थम् एव अग्रतः मे एकं विज्ञापनं शृणु, यदि (त्वम्) मे न दयिष्यसे ततः तव दयनीय : दुर्लभः (भवेत्) ॥५३॥

भाषा ०- हे नाथ ! मिथ्या नहीं, यह यथार्थ ही है आगेसे मेरा एक विज्ञापन आप सुनो, जो आप मेरे ऊपर दया नहीं

करोगे तो आपको मेरे सदृश दया करने योग्य पात्र भी दुर्लभ होजायगा ॥८३॥

अव ०- इस श्लोकमें श्रीयामुनाचार्य कहते हैं, कि-हमारी रक्षा आपको अवही करनी पडेगी -

तदहं त्वदृते न नाथवान्मदृते त्वं दयनी-
यवान्न च ॥ विधिनिर्मितमेतदन्वयं भगवन् !
पालय मा स्म जीहपः ॥८३॥

अन्व ०- हे भगवन् ! तत् अहं त्वत् ऋतेनाथवान्न (अस्मि) त्वं मत् ऋते दयनीयवान् च न (असि) विधिनिर्मितम् एतदू अन्वयं पालय, मास्म जीहप : ॥८४॥

भाषा ०- हे भगवन् ! तस्मात् मैं आपके बिना नाथवाला नहीं हूं अर्थात् आपके विना मेरा कोई नाथ नहीं है, इसीप्रकार आपकोभी मेरे सदृश इस जगत्में दयनीय अर्थात् दयाकरनेके योग्य पात्र दीन दुःखी दूसरा कोई नहीं है, तव यह दैवयोगसे मेरा और आपका दीनदयालुभाव संबंध जुडगया है तो अव आप इसको पालन करो कभी त्याग मत कराओ क्योंकि आप समर्थ हो मैं कदाचित् इस संबंधको त्याग करना विचारूं तोभी

आप त्याग मत करने देओ - (मा स्म-(अ) जीहपः-ओहाक् त्यागे इत्यस्मात् प्रेरणायां लुङि मध्यमपुरुषैकवचनन्) ॥५३॥

अव०-श्रीयामुनाचार्य स्वामी इन श्लोकमें आत्मसमर्पण करते हैं-

वपुरादिषु योऽपि कोपि वा गुणतोऽसानि
यथातथाविधः ॥ तदयं तव पादपद्मयोरह-
मद्यैव मया समर्पितः ॥५५॥

अन्व ०- (हे नाथ) वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा (भवामि) गुणतः यथातथाविधः असानि तत् अयम् अहम् तव पादपद्मयोः अद्यैव मया समर्पितः (अस्मि) ॥५५॥

भाषा ०- हे स्वामिन् ! देह इन्द्रियें, मन, प्राण, बुद्धि इत्यादिकोंमें जो कोई मैं अर्थात् मेरा आत्मा होवै तथा सत्त्वादिक गुणोंके वश होकर जैसा भलाबुरा मैं होऊं, सो यह मैं आपके चरणकमलोंमें अपने आपको समर्पण करचुका, क्योंकिआप शरणागतरक्षक हो ॥५५॥

अव ०- अथवा भलीभांति विचारनेसे मैं मेरा सब प्रथमही आपहीका हूं तो अब क्या समर्पण करूं, यह कहते हैं -

मम नाथ ! यदस्ति योऽस्म्यहं सकलं तद्धि
तवैव माधव ! ॥ नियतस्वमिति प्रबुद्धधीरथ-

वा किन्नु समर्पयामि ते ॥५६॥

अन्व ०- अथवा हे नाथ ! हे माधव ! मम यत् अस्तियःअहम् अस्मि तत् सकलं तवैव हि नियतस्वम् इत्ति प्रबुद्धधीः ते किन्नु समर्पयामि ॥५६॥

भाषा ०- अथवा हे स्वामिन् ! हे लक्ष्मीपते ! मेरा जो है और जो मैं हूं वह ममतास्पद और अहन्तास्पद सब आपका ही नियत धन है नाम निश्चित पदार्थ है ऐसा जब मैं विचार करूं तो फिर आपको क्या समर्पण करूं समर्पण करनेको मेरा कुछ हेही नहीं जो मैं मेरा है सो तो प्रथमही आपका है ॥५६॥

अव ०- श्रीयामुनाचार्य स्वामी इस श्लोकमें भगवान्से भक्ति मांगते हैं -

अवबोधितवानिमां यथा मयि नित्यां भवदी-

यतां स्वयम् ॥ कृपयैवमनन्यभोग्यतां भग-

वन् ! भक्तिमपि प्रयच्छ मे ॥५७॥

अन्व ०- हे भगवन् ! मयि नित्याम् इमां भवदीयतां यथा (भवान्) स्वयम् अवबोधितवान् एवं कृपया अनन्यभोग्यतां भक्तिम् अपि मे प्रयच्छ ॥५७॥

भाषा ०- हे भगवन् ! मेरे विषयमें नित्यही स्थित रही

जो यह भवदीयता नाम आपका स्वत्व इसको जैसे आपने स्वयं कृपाकरके जनाया है, इसी प्रकार फिर भी कृपाकरके अनन्य भोग्यतारूप भक्ति जो आपके विषय प्रीति है तिसको भी दीजिये । अर्थात् मैं नहीं जानता रहा कि मैं आपका हूं सो जैसे जनाया तैसेही आपकी सेवामें अनुरागभी आपही देओ यही प्रार्थना है ॥५७॥

अव ०- और जगह ब्रह्मा होनेकी अपेक्षासे आपके दासोंके यहां कीडाका जन्म होकर रहना भी श्रेष्ठ है, यह कहते हैं -

तव दास्यसुखैकसङ्गिनां भवनेष्वस्त्वपि
कीटजन्म मे ॥ इतरावसथेषु मा स्म भूदपि
मे जन्मचतुर्मुखात्मना ॥५८॥

अन्व ०- (हे नाथ) तव दास्यसुखैकसङ्गिनां भवनेषु मे कीटकजन्म अपि अस्तु, इतरावसथेषु चतुर्मुखात्मना अपि जन्म मा स्म भूत् ॥५८॥

भाषा ०- हे नाथ ! जो आपके दास्यसुखके मुख्य संगी हैं आपकी सेवा विना जिनका जीवन दुर्लभ है तिनके घरोंमे तो हमारा कीटपतंग अर्थात् कुछ नीच जन्म भी होय तो ठीक है, परंच आपसे विमुखोंके घरोंमें तो ब्रह्मारूप हो करके भी

मेरा जन्म नहीं होवै यही प्रार्थना है ॥५८॥

अव०- आपके अनुरागमें डूबे हुए भक्त जनोंकी कृपादृष्टि मेरे ऊपर पडे, यह मांगते हैं -

सकृत्त्वदाकारविलोकनाशया तृणीकृताऽनु-
त्तमभुक्तिमुक्तिभिः ॥ महात्मभिर्मामवलोक्य-
तां नय क्षणेऽपि ते यद्विरहोऽतिदुस्सहः॥५९॥

अन्व०- (हे प्रभो !) सकृतत्त्वदाकारविलोनाशया तृणीकृताऽनुत्तमभुक्तिमुक्तिभिः महात्मभिःमाम् अवलोक्यतां नय यद्विरहः ते क्षणेऽपि अतिदुस्सहः (अस्ति) ॥५९॥

भाषा०- हे प्रभो ! एकवार आपके श्रीविग्रहके दर्शनकी आज्ञा करके तृणके तुल्य किये हैं उत्तमोत्तम ब्रह्मादिलोकोंके भोग और कैवल्य मोक्ष जिन्होंने ऐसे महात्माओंके अवलोकनका पात्र मेरेको करो, कौनसे महात्मा, कि जिनका विरह आपको अतिदुःखसे भी नहीं सहा जाता है। वंशस्थ वृत्त ॥५९॥

अव०- जो आपके सेवाके उपयोगमें न आवे ऐसे किसी पदार्थकी इच्छा नहीं करता हूं -

न देहं न प्राणान्न च सुखमशेषाऽभिलषितं
न चाऽऽत्मानं नाऽन्यत्किमपि तव शेषत्पवि-

भवात् ॥ बहिर्भूतं नाथ क्षणमपि सहे यातु शतधा निनाशं तत्सत्यं मधुमथन ! विज्ञापन मिदम् ॥६०॥

अन्व ०- हे नाथ ! तव शेषत्वविभवात् बहिर्भूतं न देहं न प्राणान् न च अशेषाभिलषितं सुखं न च आत्मानं अन्यत् किमपि क्षणम् अपि (अहं) सहे, तत् शतधा विनाशं यातु हे मधुमथन ! इदं विज्ञापनं सत्यम् (अस्ति) तव शेषत्वविभवाद्बहिर्भूतं क्षणमपि न सहे, तव शेषत्वविभवाद्बहिभूतान् प्राणान् क्षणमपीत्यादिरीत्या योज्यम् ॥६०॥

भाषा ०- हे नाथ ! आपकी दास्यताके वैभवसे बाहर होने वाले देहकोभी क्षणभरभी मैं नहीं सह सकता हूं, इसी प्रकार आपके अतिशयाधायक(ऊत्कर्षनिरूपक) पनेके वैभवसे दूर रहनेवाले प्राणोंकोभी क्षणभी नहीं सह सकता हूं तथा आपके अतिशयाऽऽधायक न होनेवाले सम्पूर्णके अभिलाषाविषय होनेवाले सुखकोभी क्षणभरभी नहीं सह सकता हूं, इसीतरह आपकी शेषताके वैभवसे विमुख आत्माकोभी नहीं सह सकता, तथा इसप्रकारका और जो कुछ होय तिसकोभी क्षणमात्र भी नहीं सह सकता हूं। आपके दासपनेसे

विमुख जो है वह सौ प्रकारसे विनाशको प्राप्त होवै यही चाहता हूं, हे मधुदैत्यके नाश करनेवाले ! यह मेरा विज्ञापन सत्य है । शिखरिणी वृत्त है ॥६०॥

अव ०- मैं अनादिपापका सदन होकर भी आपके गुण गणोंका स्मरण करके निर्भय होना चाहता हूं, यह कहते हैं-

दुरन्तस्यानादेरपरिहरणीयस्य महतो विहीना
चारोहं नृपशुरशुभस्यास्पदमपि ॥ दया -
सिन्धो ! बन्धो ! निरवधिकवात्सल्यजलधे !
तव स्मारं स्मारं गुणगणमितीच्छामि
गतभीः ॥६१॥

अन्व ०- विहीनाचारः नृपशुः अहम् दुरन्तस्य अनादेः अपरिहरणीयस्य महतः अशुभस्य आस्पदम् अपि हे दयासिन्धो ! हे बन्धो ! हे निरवधिकवात्सल्यजलधे ! तव गुणगणं स्मारं स्मारं गतभीः (स्याम्) इति इच्छामि ॥६१॥

भाषा ०- शास्त्रीय आचारको छोडकर अत्यंत नीच आचरण करनेवाला अत एव मनुष्यरूपवाला पशु ऐसा मैं आदि अंतरहित और जिसका परिहार न होसके ऐसे महान्

अशुभका स्थान हूं, तोभी हे कृपासागर ! हे सर्वबन्धो ! (माता पिता इत्यादि सर्वविध बंधुरूप) हे निःसीम वात्सल्यगुणके समुद्र ! आपके गुणगणोंका स्मरण करकरके सर्वप्रकारसे निर्भय होजाऊं ऐसी इच्छा करता हूं ॥६१॥

अव ०- इस श्लोकमें श्रीयामुनमुनि कहते हैं, कि - हे प्रभो ! आपही मेरे मनको शिक्षा देओ -

अनिच्छन्नप्येवं यदि पुनरितीच्छन्निव रज-
स्तमश्छन्नश्छद्मस्तुतिवचनभङ्गीमरचयम् ॥
तथापीत्थं रूपं वचनमवलम्ब्याऽपि कृपया
त्वमेवैवंभूतं धरणिधर ! मे शिक्षय मनः॥६२॥

अन्व ०- हे धरणिधर ! यदि अपि रजस्तमश्छन्नः (अत एव) एवम् अनिच्छन् अपि (अहम् पुनः इति इच्छन् इव छद्मस्तुतिवचनभङ्गीम् अरचयम् ! तथापि इत्थं रूपम् अपि वचनम् अवलम्ब्य त्वम् एव कृपया मे मनः एवंभूतं शिक्षय ॥६२॥

भाषा ०- हे भूमि देवीके उद्धार करनेवाले प्रभो ! यद्यपि रजोगुण तमोगुणसे आच्छादित होनेसे इस प्रकारकी इच्छाको नहीं करते हुए भी मैंने फिर इच्छा करते हुए सरीखा होकर

कपट करके स्तुतिके वजनोंके प्रकारको रचा है, तो भी इस प्रकारके कपटकी स्तुतिके वचनोंका भी अवलम्बन करके आपही कृपा करके मेरे मनको ऐसी शिक्षा देओ कि जिसमें साँची यह स्तुति करनेके लायक होजावै ॥६२॥

अव ०- श्रीयामुनाचार्य स्वामी कहते हैं कि - मेरे सर्वविध वन्धु आप हो इसीसे मेरा सव भार आपहीको है -

पिता त्वं माता त्वं दयिततनयस्त्वं प्रियसुहृ-
त्त्वमेव त्वं मित्रं गुरुरपि गतिश्चाऽसि जगताम् ॥
त्वदीयस्त्वद्भृत्यस्तव परिजनस्त्वद्गतिरहं
प्रपन्नश्चेवं सत्यहमपि तवैवास्मि हि भरः ॥६३॥

अन्व०- हे हरे ! जगतां त्वं पिता त्वं माता त्वंदयिततनयःत्वमेवप्रियसुस्त्त्वं मित्रं गुरुरपि गतिश्चअसि, अहं त्वदीयः त्वद्भृत्यः तवपरिजनः त्वद्गतिः प्रपन्नश्च (अस्मि) एवं सत्यपि अहं तवैध भरः अस्मि ॥६३॥

भाषा ०- हे हरे ! सव जगत्के आपही पिता हो आपही माता हो आपही प्रियपुत्र हो आपही प्रियसुहृद हो आपही मित्र हो गुरुभी आपही हो उपायभी आपही हो, भाव यह कि-पिता

सरीखे रक्षक, मातासे प्रिय करनेवाले, पुत्रसे सन्तोष करानेवाले सुहृद्से विश्वासपात्र, मित्रसे गुप्त भाषण योग्य, गुरुसे अज्ञान नाशक और उपाय सरीखे सिद्ध उपाय भी आपही हो, मैं आपका सम्बन्धी भृत्य सरीखा पोषणीय, परिजन सरीखा सेवा करनेवाला केवल आपहीको उपाय माननेवाला तथा आपका शरणागत भी हूं, ऐसा होकर भी आपहीको मेरा भार है ॥६३॥

अव ०- इस श्लोकमें श्रीयामुनाचार्य स्वामी कहते हैं कि मैं सत्कुलमें जन्म पाकर भी अज्ञानमें डूब रहा हूं तिससे आपही रक्षा करो-

जनित्वाहं वंशे महति जगति ख्यातयशसां
शुचीनां युक्तानां गुणपुरुषतत्त्वस्थितिविदाम् ॥
निसर्गादेव त्वच्चरणकमलैकान्तमनसामधोऽधः
पापात्मा शरणद ! निमज्जामि तमसि ॥६४॥

अन्व ०- हे शरणद ! जगति ख्यातयशसांशुचीनां युक्तानां गुणपुरुषतत्त्वस्थितिविदां निसर्गादेव त्वच्चरणकमलैकान्तमनसां महति वंशे जनित्वा अहं पापात्मा अधोऽधः तमसि निमज्जामि ॥६४॥

भाषा ०- हे आश्रय देनेवाले ! हे प्रभो ! जगत्के विषय

विख्यात यशवाले शुचि (निर्मल चित्तवाले) युक्त (आत्मविद्यानुसंधानरूप योग मार्गमें प्रवृत्त) तथा सत्त्वादिक तीनों गुण पुरुष नाम क्षेत्रज्ञ और २६तत्त्व (प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार ये तीन तथा पंचतन्मात्रा और पंचभूत ये दश तथा एकादश इन्द्रियें तथा जीव और ईश्वर) इनकी स्थितिको जाननेवाले, तथा स्वभावहीरो आपके चरणकमलोंमें एकांत मन लगावने वाले ऐसे श्रीनाथमुनि आदिकोंके परम उत्कृष्ट वंशमें जन्म लेकर भी मैं पापात्मा नीचेसे नीचे अज्ञानरूप अंधकारहीमें डूबता जाता हूं, तिस हेतुसे आप रक्षा करो ॥६४॥

अव ०- सकल दोषोंकी खानि ऐसा मैं कैसे संसारसागरके पार होकर आपकी सेवाको प्राप्त होऊंगा यह कहते हैं -

अमर्यादः क्षुद्रश्चलमतिरसूयाप्रसवभूः कृतघ्नो
दुर्मानी स्मरपरवशो वञ्चनपरः ॥ नृशंसः
पापिष्ठः कथमहमितो दुःखजलधेरपारादुत्तीर्णः
स्तव परिचरेयं चरणयोः ॥६५॥

अन्व०- हे (प्रभो!) अमर्यादः क्षुद्रः चलमतिः असूयाप्रसवभूः कृतघ्नः दुर्मानी स्मरपरवशः वञ्चनपरः नृशंसः

पापिष्ठः अहं कथम् इतः आपारात् दुःखजलधेः उत्तीर्णः तव चरणयोः परिचरेयम् ॥६५॥

भाषा ०- हे प्रभो ! विना मर्यादाका क्षुद्र चञ्चलबुद्धिवाला असूया नाम गुणोंमें दोष ठहरावना तिसका जन्मभूमि अर्थात् असूया मेरेसे उत्पन्न भई है तथा किये उपकारोंको नहीं माननेवाला दुर्मानी काम परवश ठगनेमें तत्पर बडा क्रूर पापकर्म करनेवाला ऐसा मैं कैसे इस अपार संसाररूप दुःखसमुद्रसे निकलकर आपके चरणोंकी परिचर्या (सेवा) करुंगा ॥६५॥

अव ०- अत्यंतपापी जयंत काक और शिशुपाल आदिकी रक्षा करनेवाले ऐसे आपकी क्षमाका अविषय अपराध भी है क्या ? यह कहते हैं ॥

रघुवर ! यदभूस्त्वं तादृशो वायसस्य प्रणत
इति दयालुर्यच्च चैद्यस्य कृष्ण ! ॥ प्रतिभव
मपराद्धुर्मुग्ध ! सायुज्यदोऽभूर्वद किमपद-
मागस्तस्य तेऽस्ति क्षमायाः ॥६६॥

अन्व ०- हे रघुवर ! यत् (यदा) त्वं तादृशः वायसस्य प्रणत इति दयालुः अभूः हे कृष्ण! यच्च (यदा च) प्रतिभवम् अपराद्धुः चैद्यस्य सायुज्यदः अभूः हे मुग्ध ! (तदा) तस्य ते क्षमायाः किम् आगः अपदम् अस्ति (न

किमपीत्यर्थः) ॥६६॥

भाषा ०- हे राघवेन्द्र! जब आप उस प्रकारके अपराधी अर्थात् अंतःपुरके (श्रीस्वामिनीजीके) अपराध करनेवाले काकके ऊपर यह हमारी शरण आया ऐसा समझकर दयालु भये, तथा हे कृष्ण! जिन आपके हर जन्ममें (नृसिंहावतारमें हिरण्यकशिपु, होकर रामावतारमें रावण होकर, कृष्णावतारमें शिशुपाल होकर) अपराधकरनेवाले शिशुपालको आपने अपना सायुज्य दिया, हे सुन्दर! तब ऐसे आपकी क्षमाका कौनसा अपराध है जो स्थान न होवै अर्थात् सर्व अपराधभी आपकी क्षमाके स्थान हैं सर्व अपराधोंको आप क्षमाही करते हो तब मेरे अपराधोंको क्षमा कर क्यों रक्षा नहीं करते हो? वृत्तं मालिनी ॥६६॥

अब ०- जो एकबार आपका हूं ऐसा कहकर शरण आता है उसको सर्वाभयप्रदान करता हूं ऐसी आपकी प्रतिज्ञाहै, तब मेरी क्यों उपेक्षा करते हो! यह श्रीयामुनमुनि कहते हैं ॥

ननु प्रपन्नः सकृदेव नाथ! तवाहमस्मीति
च याचमानः ॥ तवानुकम्प्यः स्मरतः प्रतिज्ञां
मदेकवर्जं किमिदं व्रतं ते ॥६७॥

अन्व ०- हे नाथ ! अहं तव अस्मि इति याचमानः सकृदेव प्रपन्नः ननु प्रतिज्ञां स्मरतः तव अनुकम्प्यः (भवति (एवं सति) इदं व्रतं मदेकवर्जं किम् (अस्ति) ॥६७॥

भाषा ०- हे नाथ ! आपका हूं ऐसी याचनाकरता भया एकवारभी आपके शरण आवै तो अपनी प्रतिज्ञाको सदा स्मरण करनेवाले जो आप तिन आपकी कृपाका पात्र होता है, तब फिर यह आपका व्रत अर्थात् विभीषणके शरण आवते समय जो आपने कहा है, कि-"सकृदेव प्रपन्नाय तवाऽस्मीति च याचते ॥ अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥" जो एक वारभी मैं आपका हूं ऐसा कहकर मेरे शरण आवता है उसको सर्वभूतप्राणियोंसे मैं अभय देता हूं यह मेरा व्रत है। वह व्रत क्या मेरे एकको छोडकर है क्या ? ऐसा तो नहीं है तब मेरी भी रक्षा करनी चाहिये उपेक्षा उचित नहीं है वृत्त उपेन्द्रवज्रा है ॥६७॥

अव०- स्तोत्रके समाप्तिमें श्रीयामुनाचार्य स्वामी अपनेमें भगवत्प्रसन्नताके लायक कोई योग्यता नहीं मानकर परमभक्ताग्रगण्य अपने पितामह श्रीनाथमुनि स्वामीका संबंध बतायकर भगवान्से प्रसन्नता मांगते हैं -

अकृत्रिमत्वच्चरणारविन्दप्रेमप्रकर्षाऽवधिमात्म-

वन्तम् ॥ पितामहं नाथमुनिं विलोक्य प्रसीद मद्वृत्तमचिन्तयित्वा ॥६८॥

अन्व०- (हे प्रभो !) अकृत्रिमत्वच्चरणारविन्दप्रेमप्रकर्षावधिम्आत्मवन्तंपितामहंनाथमुनिं विलोक्य मद्वृत्तम् अचिन्तयित्वा (मयित्वं) प्रसीद ॥६८॥

भाषा०- हे प्रभो ! स्वाभाविक जो आपके श्रीचरणारविन्दोंके विषयमें प्रेमकी अधिकता तिसकी सीमारूप तथा आत्मपरमात्मके यथार्थ ज्ञानवाले ऐसे मेरे पितामह श्रीनाथमुनिको देखकर यह यामुनाचार्य नाथमुनिके वंशका है ऐसा विचारकर मेरे दुष्ट चरित्रोंका चिन्तन नहीं करके मेरे ऊपर आप प्रसन्न होओ यही प्रार्थना है, वृत्त उपजाति है ॥६८॥

अव ०- श्रीयामुनाचार्य स्वामीकी कृति समाप्त भई अब स्तोत्रके अंतमें उनका उपकारस्मरणार्थ उन श्रीयामुनाचार्य स्वामीके विषयमें श्रीरामानुजस्वामीका किया हुआ यह श्लोक शिष्टजन बोलते हैं इसीसे इसका पुस्तकमेंभी पाठ है, इसका अर्थ लिखते हैं ॥

यत्पादाऽम्भोरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मषः ॥
वस्तुतामुपयातोऽहं यामुनेयं नमामि तम् ॥६९॥

अन्व ०- यत्पादाम्भोरुहध्यानविध्वस्ताशेषकल्मषः अहं वस्तुताम् उपयातः तं यामुनेयं नमामि ॥६९॥

भाषा ०- श्रीरामनुजस्वामीने श्रीगीताभाष्यके आदिमें इसी श्लोकसे मंगलाचरण किया है, कहते हैं, कि-निज श्रीयामुनाचार्यस्वामीके चरणकमलके ध्यानसे हमारे संपूर्ण कल्मष पाप नष्ट हुए और हम वस्तुके भावको प्राप्त हुए, अर्थात् जबतक श्रीयामुनमुनिके चरणकमलका ध्यान नहीं किया तब तक अवस्तु नाम हम कोई वस्तु नहीं रहे, श्रुति कहती है, कि- ''असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति वेद चेत्। अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद सन्तमेनं ततो विदुः ॥'' जो ब्रह्मको नहीं जानता वह असत् है, जो ब्रह्मको 'है' ऐसा जानता है उसको ज्ञानी जंन सत् नाम है, ऐसा जानते हैं। श्रीरामानुजस्वामीका यह अनुसन्धान है कि-श्रीयामुनमुनिके चरणकमलके ध्यानसे हमको ब्रह्मज्ञान प्राप्त भया तब सत् हुए ऐसे श्रीयामुनमुनिको हम नमन करते हैं ॥६९॥

सौराष्ट्राऽलंकारे भावनगरपत्तने गता पूर्तिम् ॥
स्तोत्रप्रदीपिकेयं भागवताचार्यकृतभाषा ॥ १ ॥
इषुरसनन्देन्दुमिते १९६५ श्रीविक्रमवत्सरेमधौ

मासि ॥

गुरुयुतराकातिथ्यां वैदर्भीशाङ्घ्रिपंकजे

न्यस्ता ॥२॥

इति श्रीमदुभयवेदान्तविदुषां श्रीसुदर्शनाचार्यणामन्तेवासिना
श्रीबलरामस्वामिचरणाश्रितेन भागवताचार्येण कृता
स्तोत्ररत्नप्रदीपिका नाम भाषाटीका समाप्ता ॥
॥ श्रीमते रामानुजाय नमः श्रियै नमः ॥

समाप्तमिंद स्तोत्रम् ॥

❀ ❀ ❀

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS